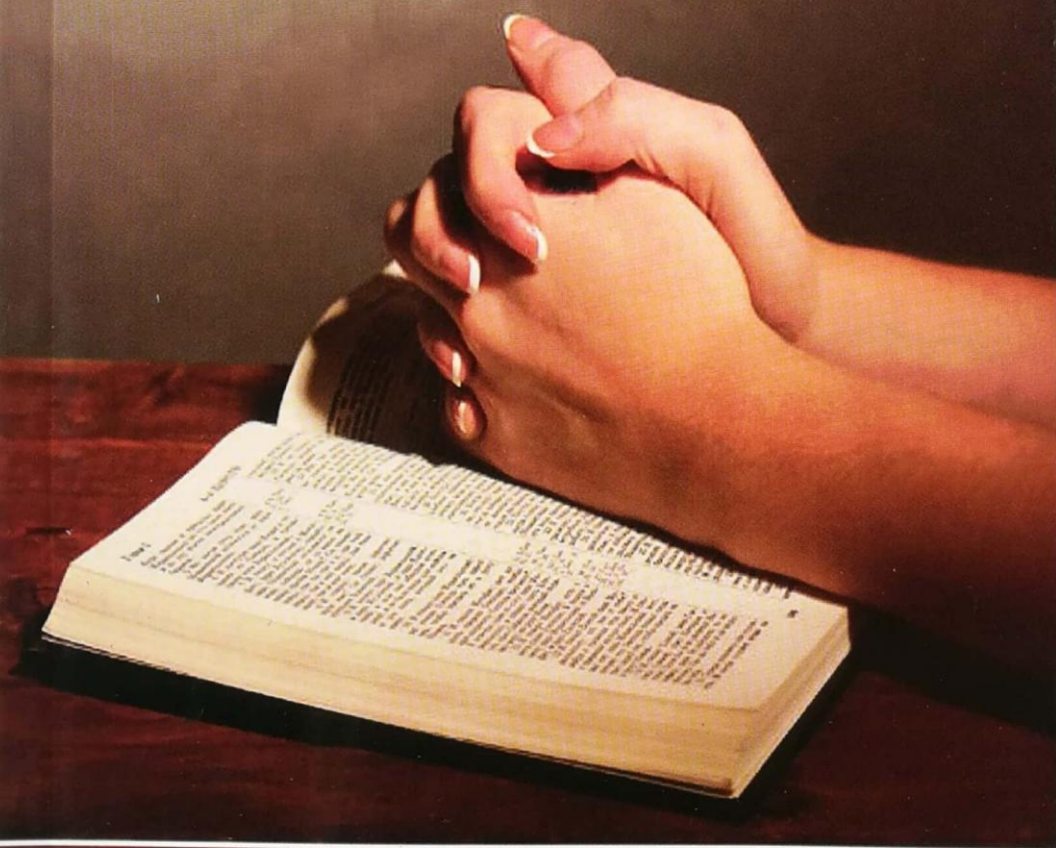
GOD CENTRED PRAYING

परमेश्वर केन्द्रित प्रार्थना

(प्रार्थना करने का सही तरीक़ा)



ज़ैक पूनैन

परमेश्वर केन्द्रित प्रार्थना

(प्रार्थना करने का सही तरीक़ा)

जैक पूनैन

प्रकाशक

मसीही साहित्य संस्था

70 जनपथ, नई दिल्ली-110001

GOD-CENTERED PRAYING

by

Zac Poonen

Copyright – Zac Poonen (1989)

This book has been copyrighted to prevent misuse. It should not be reprinted or translated without written permission from the author.

All scripture unless otherwise stated are taken from the New American Standard Bible versions 1960, 1962, 1963, 1968, 1971, 1972, 1973, 1975, 1977 1995 by the Lockman Foundation. Used by Permission.

For further details Please contact:
Christian Fellowship Centre
40 DaCosta Square,
Bangalore – 560084, India
cfc@cfcindia.com, www.cfcindia.com
Tele: +91-080-25477103, Fax: 080-51251291

Or

Pune Christian Fellowship Church
B-21, B U Bhandari Greens, Dhanori,
Pune - 411015, India.
Tele: +91-98500 67885, 86552 02001, (020) 27029027
Email: reachpunecfc@gmail.com

Printed & Published by
MASIHI SAHITYA SANSTHA
70 Janpath, New Delhi - 110001
Ph: 011-23320253, 23320373
E-mail: mssjanpath@gmail.com

विषय-सूची

अध्याय **पृष्ठ सं.**

यह पुस्तक और आप 5

1. ऐसे प्रार्थना न करें 8
2. परमेश्वर जो हमारा पिता है 21
3. परमेश्वर के नाम की महिमा 35
4. परमेश्वर का राज्य 51
5. परमेश्वर की इच्छा 59
6. हमारी शारीरिक ज़रूरतें 67
7. पापों की क्षमा 81
8. बुराई से छुटकारा 97
9. सारी महिमा परमेश्वर को मिले 114

यह पुस्तक और आप...

प्रभावशाली प्रार्थना के दो मूल तत्व हैं।

पहला यह कि हममें परमेश्वर का दिया हुआ बोझ होना चाहिए। प्रार्थना एक ऐसा चक्र है जिसका आरम्भ और अंत दोनों ही परमेश्वर में होता है। इस चक्र के पहले अर्धभाग में, परमेश्वर पवित्र-आत्मा द्वारा हमारे हृदयों में प्रार्थना का बोझ डालता है। और इस चक्र के दूसरे अर्धभाग में, परमेश्वर-प्रेरित उसी प्रार्थना को हमें अपने पिता के पास वापिस भेजना होता है। इस तरह, यह चक्र पूरा हो जाता है।

"आत्मा में प्रार्थना" करने का यही अर्थ होता है।

दूसरा मूल तत्व विश्वास है।

परमेश्वर हमसे यह अपेक्षा करता है कि हम उस पर भरोसा करें। हम अविश्वास द्वारा उसका अपमान करते हैं - क्योंकि अविश्वास यह दर्शाता है कि परमेश्वर को हमारा इतना भी ध्यान नहीं है जितना ध्यान पृथ्वी के पिता अपने बच्चों का रखते हैं।

अगर हमारे निवेदन सिर्फ हमारे मनों या ज़बानों में से ही पैदा हो रहे हैं, तो वास्तव में वह परमेश्वर के कानों तक पहुँचने वाली प्रार्थना नहीं हो सकती। जब हमारे निवेदन और विनतियाँ हमारे हृदयों की गहरी लालसाओं में से आते हैं, सिर्फ तभी वे सच्ची प्रार्थना बन पाते हैं।

प्रार्थना मूल रूप में जीवन का मामला होता है। और हमारी प्रार्थनाओं का प्रभावशाली होना, हमारे जीवन की धार्मिकता पर निर्भर रहता है।

सच्ची धार्मिकता एक व्यक्ति को परमेश्वर-केन्द्रित बना देती है। इसका अर्थ है कि वह सब बातों को परमेश्वर के नज़रिए से देखना शुरु कर देता है (कुलु. 1:9, भावानुवाद)। अब वह लोगों, वस्तुओं और परिस्थितियों को मनुष्यों के नज़रिए से नहीं देखता (2 कुरि. 5:16)। उसके आसपास सब कुछ पहले जैसा ही होगा। लेकिन परमेश्वर-केन्द्रित मनुष्य स्वर्गीय स्थानों में ऊँचा उठाया जा चुका है, और अब वह सब मनुष्यों और सब बातों को वैसे ही देखता है जैसे उन्हें परमेश्वर देखता है।

सिर्फ ऐसा व्यक्ति ही परमेश्वर के मन के अनुसार प्रार्थना कर सकता है। परमेश्वर ने यह चाहा था कि हमारे मनों के लिए प्रार्थना बिलकुल वैसी ही हो जैसे हमारी देह के लिए साँस लेना है।

साँस लेना एक ऐसी क्रिया है जो हम हर समय बिना कोई परिश्रम किए करते रहते हैं। हमें साँस कैसे लेना है, यह सीखने के लिए हमें किताबें पढ़ने की ज़रूरत नहीं होती! असल में, अगर हमें साँस लेने में तकलीफ हो रही हो, तो यह किसी बीमारी का संकेत होता है!

लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रार्थना करना एक थकाने वाला काम नहीं है।

यीशु ने "ऊँची आवाज़ से आँसू बहा-बहाकर" प्रार्थना की थी (इब्रा. 5:7)।

"प्रेरित अपनी प्रार्थनाओं में बड़े लगन से प्रयास करते थे" (कुलु. 4:12)।

पूरे हृदय से समर्पित सभी विश्वासी यह पाएंगे कि प्रार्थना ऐसी ही होती है, “क्योंकि हमारा संघर्ष दुष्टता की आत्मिक शक्तियों से है” (इफि. 6:12)।

लेकिन प्रार्थना जब एक नीरस परम्परा बन जाती है, तब वह इस बात का एक स्पष्ट चिन्ह् होता है रोगी को “आत्मिक दमा” हो गया है।

ऐसे विश्वासी बीमार हैं। और यह बात उन्हें समझ आनी चाहिए।

प्रार्थना कैसे करनी है, इस बारे में उन्हें और ज़्यादा शिक्षा देने से उनकी बीमारी दूर नहीं होगी, बल्कि उन्हें इस बारे में कुछ सिखाने की ज़रूरत रहेगी कि वे अपने जीवन की प्राथमिकताओं को फिर से कैसे क्रमांकित/रेखांकित करें।

इस पुस्तक की यही विषय-वस्तु है।

जब हम परमेश्वर में केन्द्रित होते हैं और हमारी प्राथमिकताएं सही होती हैं, तब हम इस “दमे” की बीमारी से चंगे हो जाते हैं।

प्रार्थना में तब भी ऊँचे स्वर से पुकारना और आँसू बहाना होगा, तब भी प्रसव-पीड़ा और संघर्ष होगा, लेकिन अब वह एक धार्मिक विधि नहीं होगी। अब वह एक हर्ष और आनन्द बन जाएगी।

अगर आप एक ऐसा जीवन चाहते हैं, तो आगे पढ़ते रहिए...

अध्याय 1

ऐसे प्रार्थना न करें

“जब तुम प्रार्थना करो, तो पाखण्डियों की तरह न करना, क्यों आराधनालयों और सड़कों के मोड़ों पर लोगों को दिखाने के लिए उन्हें प्रार्थना करना अच्छा लगता है। मैं तुमसे सच कहता हूँ कि वे अपना पूरा प्रतिफल पा चुके हैं। लेकिन जब तुम प्रार्थना करो, तो अपने भीतरी कक्ष में जाना और द्वार बंद करके अपने पिता से जो गुप्त में है प्रार्थना करना, और तेरा पिता जो गुप्त में देखता है, तुझे प्रतिफल देगा।

और जब तुम प्रार्थना करो, तो ग़ैर-यहूदियों की तरह अर्थहीन बातें न दोहराना, क्योंकि वे सोचते हैं कि उनके ज़्यादा बोलने से उनकी सुनी जाएगी। इसलिए उनके जैसे न बनना, क्योंकि तुम्हारा पिता तुम्हारे माँगने से पहले ही तुम्हारी ज़रूरत को जानता है। इसलिए, तुम इस तरह प्रार्थना करनाः

हे हमारे पिता, तू जो स्वर्ग में है, तेरा नाम पवित्र माना जाए। तेरा राज्य आए। तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में पूरी होती है, वैसे ही पृथ्वी पर भी पूरी हो। हमारे दिन-भर की रोटी आज हमें दे। और जैसे हमने अपने अपराधियों को क्षमा किया है, वैसे ही तू भी हमारे अपराधों को क्षमा कर। और हमें परीक्षा में न ला, लेकिन बुराई से बचा। क्योंकि राज्य, पराक्रम और महिमा सदा तेरे ही हैं। आमीन।

“अगर तुम मनुष्यों के अपराध क्षमा करोगे, तो तुम्हारा स्वर्गीय पिता भी तुम्हें क्षमा करेगा। लेकिन अगर तुम मनुष्यों को क्षमा

न करो, तो तुम्हारा पिता भी तुम्हारे अपराध क्षमा नहीं करेगा" (मत्ती 6:5-15)।

यीशु ने अपने शिष्यों को बस यही एक प्रार्थना सिखाई थी। निश्चय ही, इसे सही तरह समझ लेना हमारे लिए लाभदायक होगा।

यीशु ने कहा कि हम जब भी प्रार्थना करें, तो इसी तरह प्रार्थना करें (पद 9)। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम जब भी प्रार्थना करें तो हर बार इस प्रार्थना को ही दोहराते रहें। लेकिन इसका अर्थ यह ज़रूर है प्रार्थना करते समय, हम इस नमूने का अनुसरण करें।

अगर हमारे लिए इस प्रार्थना का हरेक वाक्य सार्थक हो, तो हम यह प्रार्थना कर सकते हैं। लेकिन यह आसान नहीं है, जैसा कि हम जल्दी ही आगे देखेंगे।

इससे पहले कि यीशु ने अपने शिष्यों को प्रार्थना करना सिखाया, उसने उन्हें यह सिखाया कि कैसे प्रार्थना नहीं करनी है।

पाखण्डियों की तरह नहीं:

हमें प्रार्थना कैसे नहीं करनी है, इस बारे में बात करते हुए यीशु ने सबसे पहले यह कहा कि हमें पाखण्डियों की तरह प्रार्थना नहीं करनी है (पद 5,6)।

आप जैसे-जैसे सुसमाचारों को पढ़ेंगे, तो आप पाएंगे कि यीशु के पास पाखण्ड के बारे में कहने के लिए बहुत कुछ था। उसने बिलकुल स्पष्ट शब्दों में फरीसियों को दोषी ठहराया क्योंकि वे पाखण्डी थे। फरीसियों में बहुत सी अच्छी बातें थीं। वे प्रतिदिन प्रार्थना करते थे। वे सप्ताह में दो बार उपवास करते थे। वे न सिर्फ अपने धन का दसवांश देते थे बल्कि वे उनके घरों में उगाए हुए सौंफ और ज़ीरे का भी दसवांश देते थे। जिन बातों को वे परमेश्वर के नियमों के रूप में देखते थे, उनका वे बड़ी सावधानी से एक विस्तृत रूप में पालन करते थे। बाहरी तौर पर वे बहुत

नैतिक और धर्मी थे। आराधनालय में कभी सब्त की सभा में जाने से नहीं चूकते थे। उन्हें पवित्र-शास्त्रें का गहरा ज्ञान था। फिर भी यीशु ने उन्हें दोषी ठहराया क्योंकि वे जो कुछ करते थे, उसमें उनका प्रमुख उद्देश्य अपने साथियों का सम्मान पाना था। "उन्हें परमेश्वर की प्रशंसा से मनुष्यों की प्रशंसा ज़्यादा प्रिय लगती थी" (यूहन्ना 12:43)।

फरीसियों के वंशज - जो परमेश्वर की प्रशंसा से ज़्यादा अपने अगुवों और दूसरे मनुष्यों की प्रशंसा को ज़्यादा प्रिय मानते हैं - अब पूरे विश्व की हरेक कलीसिया और मण्डली के बीच में रहते हैं।

"हिप्पोक्रिट - पाखण्डी" के मूल यूनानी शब्द का अर्थ अभिनेता है। एक ऐसे व्यक्ति के बारे में सोचें जो हॉलिवुड के एक चलचित्र (मूवी) में यूहन्ना बपतिस्मा की भूमिका अदा करता है। उसकी असली ज़िन्दगी में वह एक ऐसा शराबी और लम्पट व्यक्ति हो सकता है जिसने दो-तीन पत्नियों को तलाक़ दे रखा हो। लेकिन मूवी (चलचित्र) में, वह परमेश्वर के एक पवित्र नबी का अभिनय करता है। यह एक पाखण्डी व्यक्ति है - मनुष्यों के सामने जो अभिनय वह करता है, वास्तव में उसके असली जीवन में वह उससे बिलकुल अलग है।

एक पाखण्डी दूसरे मसीहियों के सामने एक पूरे हृदय से समर्पित मसीही होने की भूमिका निभा सकता है। लेकिन अगर आप यह देख सकें कि वह घर में उसकी पत्नी के साथ या कार्यालय में उसके सहकर्मियों के साथ कैसा व्यवहार करता है, तब आप यह पाएंगे कि वह एक बिलकुल अलग व्यक्ति है। वहाँ वह अभिनय नहीं कर रहा है। घर में और उसके कार्यालय में वह उसके असली

रूप में है। वह एक आत्मिक व्यक्ति नहीं बल्कि एक धार्मिक व्यक्ति है।

एक अभिनेता यह चाहता है कि उसके श्रोता/दर्शक उसके अभिनय की सराहना करें। हरेक पाखण्डी भी यही चाहता है। पहली शताब्दी के फरीसी भी यही चाहते थे; बीसवीं शताब्दी के फरीसी भी यही चाहते हैं। वे जो कुछ करते हैं, चाहे वह प्रार्थना करने जैसा पुण्य काम भी क्यों न हो, वे चाहते हैं कि मनुष्य उनकी प्रशंसा करें। यह हो सकता है कि वे बहुत सुन्दर प्रार्थना करते हों, लेकिन इसमें उनका उद्देश्य सिर्फ मनुष्यों के ध्यान का उनकी तरफ आकर्षित होना होता है।

अगर हम ईमानदार हैं, तो हमें यह अंगीकार करना पड़ेगा कि हमने भी बहुत बार पाखण्डियों की तरह प्रार्थना की है - इस बात के प्रति ज़्यादा सचेत होकर कि परमेश्वर से ज़्यादा लोग हमारी प्रार्थना सुन रहे थे या नहीं। शायद हमें प्रभु के सामने जाकर यह मान लेने की ज़रूरत है कि जैसी प्रार्थना हम सब लोगों के सामने करते हैं, वैसी अकेले में नहीं करते। लोगों के बीच में प्रार्थना करते समय उन्हें प्रभावित करने के लिए शायद हम बहुत अलंकृत भाषा और जोशीले शब्द इस्तेमाल करते हों। यीशु ने हमें ऐसी प्रार्थना करने के बारे में सचेत किया है, क्योंकि इस तरह की प्रार्थना परमेश्वर के पास कभी नहीं पहुँच सकती।

अगर हम पाखण्ड से छुटकारा पाना चाहते हैं, चाहे हमारे प्रचार में से, हमारे जीने में से, या हमारी प्रार्थना में से, तो हमें परमेश्वर से यह यह कहने की ज़रूरत है कि वह हममें उसका ऐसा भय डाले जिससे हमारी दिलचस्पी मनुष्यों की प्रशंसा पाने से ज़्यादा उसकी प्रशंसा पाने में हो जाए। जब तक हम एक सही तरह से परमेश्वर का भय मानना नहीं सीखेंगे, तब तक हम अपने जीवनों

के हरेक क्षेत्र में, मनुष्यों के सामने अलग-अलग भूमिकाएं निभाने वाले अभिनेता बने रहेंगे।

यीशु ने दूसरे किसी भी पाप से ज़्यादा पाखण्ड को दोषी ठहराया था।

ग़लत छाप न छोड़ना:

आरम्भिक कलीसिया में हम सबसे पहले जिस पाप के बारे में पढ़ते हैं, वह पाखण्ड है। प्रेरितों के काम अध्याय 5 में, हम हनन्याह व सफीरा के बारे में पढ़ते हैं। उनका पाप क्या था?

क्या उनका पाप यह था कि उनकी सम्पत्ति बेचकर जितना धन उन्हें मिला था उन्होंने वह सारा धन लाकर परमेश्वर को अर्पित नहीं किया था? नहीं। उनका पाप यह नहीं था। अगर आप 1,00,000 में अपनी सम्पत्ति बेचते हैं, और उसमें से सिर्फ 50,000 परमेश्वर को देने का चुनाव करते हैं, तो उसमें कोई पाप नहीं है। अगर आप परमेश्वर को कुछ भी न देने का चुनाव करते हैं, तो उसमें भी कोई पाप नहीं है। परमेश्वर को आप कितना देते हैं, यह पूरी तरह से आपका निजी मामला है। परमेश्वर हर्ष से देने वालों से प्रेम करता है। अगर आप हर्ष से नहीं देते, तो अच्छा है कि कुछ न दें। परमेश्वर को आपके धन की कोई ज़रूरत नहीं है। उसके पास पहले ही पर्याप्त सोना और चाँदी है!

तब हनन्याह और सफीरा को क्यों मरना पड़ा था? इसकी वजह यह थीः हनन्याह ने यह दिखावा किया था कि जो धन वह प्रेरितों के चरणों में रख रहा था, वह उसकी भूमि की बिक्री की पूरी

धनराशि थी। मुख पर एक पवित्र, पुण्य भाव-भंगिमा के साथ, वह भी दूसरों की तरह ही एक पूरे हृदय से समर्पित विश्वासी नज़र आ रहा था। वह एक अभिनेता था, एक पाखण्डी। लेकिन पतरस परमेश्वर का एक जन था और वह मूर्ख नहीं बना था। उसने कहा, "शैतान ने तेरे मन में यह बात क्यों डाली कि तू पवित्र-आत्मा से झूठ बोले?" (प्रेरित. 5:3)।

हनन्याह ने क्या झूठ बोला था? उसने तो अपना मुँह भी नहीं खोला था!

झूठ बोलने का अर्थ क्या होता है? इसका अर्थ एक ग़लत छाप छोड़ना होता है; और आप अपना मुँह खोले बिना भी एक ग़लत छाप छोड़ सकते हैं।

हनन्याह ने यही किया था। वह एक पूरे हृदय से समर्पित शिष्य होने के लिए दूसरों की प्रशंसा पाना चाहता था। लेकिन वह ऐसा नहीं था। उसने अपने लिए कुछ बचा लिया था। अब, जैसा कि मैंने कहा है, वह उसका पाप नहीं था। अगर उसने सिर्फ इतना कहा होता, "भाई पतरस, मैंने अपनी ज़मीन बेची है। लेकिन मैं बाक़ी सब लोग की तरह अपना सारा धन परमेश्वर को नहीं देना चाहता। यह पूरी धन-राशि का कुछ भाग है जो मैं देना चाहता हूँ" - तो उसकी मौत नहीं होती। यह ईमानदारी होती और इसमें परमेश्वर उसकी सराहना करता।

लेकिन उसने दिखावा किया। यही उसका पाप था, और वह इस वजह से ही मरा था। कुछ देर बाद उसकी पत्नी आई, और उसने भी उसकी भूमिका बख़ूबी निभाई! उसने भी यह दिखावा किया कि वह अपना सर्वस्व दे रही है। वह भी मर गई।

वह पाखण्ड ऐसे ख़मीर की तरह था जो आरम्भिक कलीसिया में घुस गया था, और परमेश्वर जानता था कि अगर उसे तुरन्त दूर

नहीं किया गया, तो पूरी कलीसिया जल्दी ही दूषित हो जाएगी। इस वजह से ही उसने तुरन्त उन दोनों को मार डाला था।

अपने जीवन के हरेक क्षेत्र में अगर आप पाखण्ड से सचेत नहीं रहेंगे, तो आपके प्रार्थना-के-जीवन में आप कभी पाखण्ड पर जय नहीं पा सकेंगे। अगर आप इसलिए प्रार्थना करते हैं कि दूसरे आपकी सराहना करें, तो यीशु कहता है कि तुम "अपना प्रतिफल पा चुके हो" (मत्ती 6:2)। उस समय आपकी अभिलाषा यह नहीं है कि आपकी प्रार्थना के द्वारा परमेश्वर की महिमा हो, बल्कि यह कि लोग यह जानें कि आप कितनी अच्छी प्रार्थना कर सकते हैं। तब आपको वह प्रतिफल मिल जाएगा। लेकिन आपको बस वही मिलेगा। आपने वही चाहा था, और आपको वही मिलेगा।

मसीही जीवन का यह सिद्धान्त है कि हम वही पाते हैं जिसकी अभिलाषा हम अपने हृदय की गहराइयों में करते हैं, वह नहीं जो हम अपने मुँह से माँगते हैं। ढूंढो, तो तुम वही पाओगे जो तुम वास्तव में ढूंढ रहे हो!

जब हम मसीह के न्यायासन के आगे खड़े होंगे, तो हमारा सारा बाहरी आडम्बर उतार फेंका जाएगा। तब फिर हम अभिनेताओं की तरह नहीं बल्कि वैसे नज़र आएंगे जैसे हम वास्तव में हैं। इसलिए बाइबल कहती है कि हमें अपने चाल-चलन पर आज ही ध्यान देना चाहिए, क्योंकि ऐसा न हो कि हमें एक नग्न और लज्जित दशा में एक दिन वहाँ खड़ा न रहना पड़े।

1 यूहन्ना 2:28 में हम यह पढ़ते हैं, "इसलिए हे बच्चो, मसीह में बने रहो, जिससे कि जब वह प्रकट हो तो हमें साहस हो और उसके आगमन पर हमें उसके सामने लज्जित न होना पड़े।" जिन्होंने पृथ्वी पर अपने जीवन अभिनेताओं की तरह बिताए हैं, वही हैं जिन्हें उस दिन लज्जित होना पड़ेगा। अब मैं विश्वासियों

से बात कर रहा हूँ। "पहाड़ी उपदेश" का प्रचार किन लोगों के बीच में किया गया था? अगर आप मत्ती 5:1-2 पढ़ेंगे, तो आप पाएंगे कि यीशु ने वे शब्द अपने शिष्यों से बोले थे। "सावधान, अपनी धार्मिकता के काम मनुष्यों को दिखाने के लिए न करो, वर्ना तुम अपने स्वर्गीय पिता से कोई प्रतिफल नहीं पाओगे" (मत्ती 6:1)। उसने अपने शिष्यों से यह भी कहा, "फरीसियों के ख़मीर से जो उनका पाखण्ड है, सावधान रहना" (लूका 12:1)।

ज्योति में चलना:

1 यूहन्ना 1:7 में, बाइबल कहती है कि अगर हम ज्योति में नहीं चलते, तो हम परमेश्वर के साथ संगति नहीं कर सकते। अगर हम ज्योति में चलेंगे, तो हम कुछ नहीं छुपा सकेंगे, क्योंकि ज्योति सब कुछ उजागर कर देती है। जो मनुष्य अंधकार में चलता है, उसके जीवन में ही कुछ छुपाने के लिए होता है। अगर हम ज्योति में चलते हैं, तो हमारे जीवन एक खुली किताब होते हैं। तब हम लोगों को आमंत्रित कर सकते हैं कि वे आएं और हमारे जीवन, हमारे सारे हिसाब-किताब, और हमारी सारी बातों की भी जाँच कर लें। हम कुछ भी छुपाना नहीं चाहते। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम सिद्ध हो गए हैं। नहीं। इसका अर्थ सिर्फ यही है कि हम ईमानदार हैं।

परमेश्वर सबसे पहले हमसे ईमानदारी चाहता है - पूरी ईमानदारी। अगर हम पहले ईमानदार होने के लिए तैयार हो जाएंगे, तो हमारी दूसरी बहुत सी समस्याएं जल्दी ही दूर हो जाएंगी। अगर हम परमेश्वर और मनुष्यों के सम्मुख ईमानदार रहने के बुनियादी नियम के अनुसार जीवन बिताएंगे, तो हम अपने आत्मिक जीवन में बहुत तेजी से प्रगति करेंगे।

लेकिन आप पाएंगे कि यह एक युद्ध है। आप यह कह सकते हैं, "मैं इस उपदेश को वास्तव में गंभीरता से लूँगा। अब से मैं हर मामले में ईमानदार रहूँगा।" लेकिन आप यह पाएंगे कि एक सप्ताह पूरा होने से पहले ही आप फिर से अभिनेता बन जाने की परीक्षा में पड़ गए हैं, और परमेश्वर की प्रशंसा से ज़्यादा मनुष्यों की प्रशंसा चाहने लगे हैं। और आपको दोबारा से इस युद्ध को लड़ने और इसे जीतने का संकल्प करना पड़ेगा।

यह बात परमेश्वर को बहुत दुःख देने वाली है कि ऐसे बहुत से मसीही हैं जिनका नया जन्म हुए बीस, तीस, चालीस साल बीत चुके हैं, लेकिन उन्होंने कोई आत्मिक उन्नति नहीं की है क्योंकि उन्होंने अब तक ईमानदार रहने का यह बुनियादी नियम नहीं सीखा है। अगर हमारे जीवन में पाखण्ड होगा, तो हम उन्नति नहीं कर सकेंगे। हमारी प्रार्थना नहीं सुनी जाएगी। हम चाहे पूरी-रात की प्रार्थना-सभाएं करते रहें, हम सिर्फ अपना समय ही बर्बाद करेंगे। अगर हम पहले पाखण्ड से मुक्त नहीं होंगे, तो हमारी प्रार्थनाएं नहीं सुनी जाएंगी।

हमें यह समझने की ज़रूरत है कि हमारा सच्चा आत्मिक मूल्य सिर्फ वही है जो हम परमेश्वर के सम्मुख हैं, और इसके अलावा हम कुछ नहीं हैं। हमारी आत्मिक दशा इससे तय नहीं होती कि हमारा बाइबल का ज्ञान कितना है, हम कितनी प्रार्थना करते हैं, हम कितनी सभाओं में सहभागी होते हैं, या कलीसिया के प्राचीन हमारे बारे में क्या सोचते हैं। इसके विपरीत, अपने आपसे यह सवाल करें, "परमेश्वर, जो मेरे जीवन के हरेक क्षेत्र में देख सकता है, वह मेरे बारे में क्या सोचता है?" इस सवाल का जवाब ही एक सही रूप में यह तय करता है कि हम कितने आत्मिक हैं। हमें हर

रोज़ अपने आपको यह बात याद दिलाने की ज़रूरत है, वर्ना हम फिर से अभिनय करने वाले बन जाएंगे।

यीशु ने नतनीएल के लिए जो शब्द कहे, वे मुझे बहुत पसन्द हैं, "देखो, वास्तव में एक इस्राएली, जिसमें कोई कपट नहीं है" (यूहन्ना 1:47)। और यीशु आपके और मेरे बारे में यह कह सके, तो इससे बढ़कर और दूसरी कोई प्रशंसा नहीं हो सकती। नतनीएल कोई सिद्ध पुरुष नहीं था। उसमें कमियाँ थीं। लेकिन वह अपनी कमियों के बारे में ईमानदार था। वह अपने आपको वह दर्शाने की कोशिश नहीं करता था जो वह नहीं था। वह इस बात में हनन्याह और सफीरा से भिन्न था।

बार-बार शब्दों को एक अर्थहीन रूप में न दोहराना

यीशु ने प्रार्थना के बारे में जिस दूसरी बात के ख़िलाफ़ हमें चेतावनी दी, वह ग़ैर-यहूदियों की तरह अर्थहीन बातों को न दोहराने के बारे में थी। परमेश्वर प्रार्थना में हमारे शब्दों की संख्या को नहीं देखता, वह हमारे हृदय की उत्कंठा को देखता है। हमारे हृदय की उत्कंठा असली प्रार्थना होती है। वही ऊपर परमेश्वर तक पहुँचती है, और उसका ही जवाब आता है।

अगर आप एक सार्थक रूप में शब्दों को दोहराते हैं, तो उसमें कोई बुराई नहीं है। गतसमनी के बाग़ में, यीशु ने तीन बार एक ही तरह के शब्दों को दोहराते हुए प्रार्थना की थी (मत्ती 26:44)। लेकिन उसके शब्द सिर्फ एक खोखले रूप में नहीं दोहराए गए थे। हर बार जब उसने प्रार्थना की, तो वे शब्द उसके हृदय के बोझ में से आए थे। आप एक ही तरह के शब्दों द्वारा दिन में दस बार प्रार्थना कर सकते हैं, और अगर हर बार आप हृदय की सच्चाई में से प्रार्थना करेंगे, तो परमेश्वर आपकी प्रार्थना को सुनेगा।

अन्य दिनों की तुलना में, मसीही लोग रविवार को परमेश्वर से ज़्यादा झूठ बोलने के दोषी पाए जाते हैं। क्या आप जानते हैं कि ऐसा क्यों है? क्योंकि रविवार को ही वे ऐसे आराधना गीत गाते हैं, "यीशु को मैं सब कुछ देता, सब कुछ करता हूँ कुर्बान", "न सोना माँगू, न माँगू चांदी, तेरा चेहरा मैं ताकता रहूँ", आदि। आप इन शब्दों में गीत गाते हैं क्योंकि वे गीत की पुस्तक में लिखे हैं। लेकिन वे आपके लिए अर्थहीन हैं। और आपको यह अहसास नहीं होता कि जब आप वह गीत गाते हैं तो आप परमेश्वर से प्रत्यक्ष बात कर रहे होते हैं। शायद आपका ध्यान गीत के शब्दों से ज़्यादा गीत की धुन पर होता है। यही वह समय होता है जब आप परमेश्वर से झूठ बोल रहे होते हैं।

यीशु ने कहा कि जो भी निकम्मी बात हम अपने मुँह से बोलते हैं, न्याय के दिन हमें उसका लेखा परमेश्वर को देना होगा (मत्ती 12:36)। यह इस लिए है क्योंकि हम ऐसी पीढ़ी में रहते हैं जो परमेश्वर का भय नहीं मानती और हमारे प्रभु की ऐसी चेतावनियों को गंभीरता से नहीं लेती। एक खोखले रूप में शब्दों को दोहराना ऐसे ग़ैर-मसीहियों का चिन्ह् है जो लापरवाही से परमेश्वर के सामने आते हैं, और ऐसे शब्द बोलते हैं जिनका उनके लिए कोई अर्थ नहीं होता। हमारी प्रार्थना और स्तुति-आराधना में शब्दों का ऐसा व्यर्थ उपयोग कभी नहीं होना चाहिए।

लम्बी-लम्बी प्रार्थनाओं में भरोसा न करना

यीशु ने यह भी कहा ग़ैर-मसीही यह सोचते हैं कि उनके ज़्यादा बोलने से उनकी सुनी जाएगी। कुछ विश्वासी यह सोचते हैं कि अगर वे पूरी-रात की प्रार्थना-सभा करेंगे, तो परमेश्वर सिर्फ इसलिए उनकी प्रार्थना का ज़रूर जवाब देगा क्योंकि उन्होंने इतनी देर तक

प्रार्थना की है। इस तरह की प्रार्थना ग़ैर-मसीहियों की विशिष्टता होती है।

आपको कर्मेल पर्वत का वह दृश्य याद होगा जिसमें एक तरफ एलिय्याह खड़ा था और दूसरी तरफ गैर-यहूदी आराध्य-देव बाल के 450 नबी खड़े थे और यह जानने के लिए, कि सच्चा परमेश्वर कौन है, दोनों ही स्वर्ग से आग के गिरने के लिए प्रार्थना कर रहे थे। बाल देवता के नबियों की प्रार्थना-सभा बहुत लम्बी चली। वे एक प्रार्थना के बाद दूसरी प्रार्थना करते रहे; कूदते रहे, नाचते रहे, और चिल्लाते रहे। लेकिन स्वर्ग से कोई आग नहीं गिरी। परमेश्वर ने उनके हृदयों को देखा और उस पर उनके भावनात्मक आवेगों और चीख़ने-चिल्लाने का कोई असर नहीं हुआ (1 राजा 18:20-29)।

इस तरह से प्रार्थना करने वाले बहुत से मसीही भी हैं! वे सोचते हैं कि उनकी भावुकता और ज़ोर-शोर की वजह से परमेश्वर उनकी सुन लेगा।

और फिर एलिय्याह ने प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना एक मिनट से भी कम समय में पूरी हो गई और स्वर्ग से आग गिरी। प्रार्थना की यही परख है - यह नहीं कि आपकी प्रार्थना सारी रात चली है या एक ही मिनट में पूरी हो गई है, बल्कि यह कि परमेश्वर उसका जवाब देता है या नहीं! "मनुष्य तो बाहरी रूप देखता है, लेकिन परमेश्वर हृदयों को जाँचता है" (1 शमू. 16:7)।

"धर्मी-जन की प्रार्थना से बहुत कुछ हो सकता है" (याकूब 5:16)। याकूब ने वहाँ फिर एलिय्याह का उदाहरण दिया है। एलिय्याह की प्रार्थना का जवाब दिया गया, इसलिए नहीं क्योंकि उसने घण्टों प्रार्थना की थी, बल्कि इसलिए क्योंकि वह एक धर्मीजन था। प्रार्थना

के पीछे का जीवन प्रार्थना को प्रभावशाली बनाता है। हम यह बात कभी न भूलें।

इससे पहले कि यीशु ने अपने शिष्यों को प्रार्थना करना सिखाया, उसने उन्हें इस तरह की कुछ बुनियादी बातें सिखाईं। हम तब तक सही तरह से कभी प्रार्थना नहीं कर सकते जब तक हम पहले यह नहीं सीख लेते कि हमें प्रार्थना कैसे नहीं करनी है।

इन बातों में से कोई ग़लतफहमी पैदा न हो, इसलिए मैं यहाँ एक अंतिम बात और जोड़ना चाहता हूँ।

यक़ीनन पूरी-रात की प्रार्थना-सभा में कोई बुराई नहीं है। एक बार यीशु ने भी पूरी रात प्रार्थना की थी (लूका 6:12)। यीशु ने जिस बात को दोषी ठहराया वह देर तक प्रार्थना करना नहीं बल्कि ज़्यादा शब्दों में भरोसा करना था। ज़्यादा शब्दों के उपयोग और ज़्यादा प्रार्थना में बहुत बड़ा फ़र्क होता है। अगर हम सिर्फ बहुत से शब्दों द्वारा प्रार्थना कर रहे हैं, तो वह समय की बर्बादी है। यीशु इसलिए पूरी रात प्रार्थना में बिता सकता था क्योंकि उसका हृदय सही था और उसमें परमेश्वर का दिया हुआ बोझ था।

फिर भी, प्रार्थना में बिताए गए समय की अवधि यह तय नहीं करती कि परमेश्वर उसका जवाब देता है या नहीं। प्रार्थना का जवाब प्रार्थना करने वाले व्यक्ति के जीवन द्वारा तय होता है।

अध्याय 2

परमेश्वर जो हमारा पिता है

“हे हमारे पिता, तू जो स्वर्ग में है।"

बच्चे अक्सर प्रभु यीशु से प्रार्थना करते हैं, और इसमें कोई बुराई नहीं है। लेकिन यह याद रखना अच्छा है कि प्रभु यीशु ने जो एकमात्र प्रार्थना अपने शिष्यों को सिखाई, उसमें उसने परमेश्वर पिता से प्रार्थना करना सिखाया। हम आत्मा में, पुत्र के द्वारा, पिता से प्रार्थना करते हैं।

लेकिन हरेक परमेश्वर को पिता के रूप में नहीं पुकार सकता। पृथ्वी पर, आप सिर्फ उसी व्यक्ति को पिता कहकर पुकार सकते हैं जिसके द्वारा आपका जन्म हुआ है। परमेश्वर से प्रार्थना करते समय से भी हमें यह बात याद रखनी चाहिए। जब एक मनुष्य उसके पापों से मन फिराता है, और यीशु मसीह को प्रभु मानकर अपना जीवन उसे सौंप देता है, सिर्फ तभी परमेश्वर की संतान के रूप में उसका नया जन्म होता है। और तब वह परमेश्वर को अपना “पिता” कहकर पुकार सकता है।

नई वाचा में हमारे विशेषाधिकार

इस्राएली परमेश्वर को कभी अपना पिता कहकर सम्बोधित नहीं कर सकते थे। सम्बोधन के इस शीर्षक की शुरुआत यीशु ने की थी। यह वह शीर्षक है जिसे स्वयं यीशु ने अपने स्वर्गीय पिता से बातचीत करते समय इस्तेमाल किया था। हम यह समझ नहीं पाते हैं कि परमेश्वर को अपना पिता कहना कितना बड़ा विशेषाधिकार है।

पुरानी वाचा में, परमेश्वर ने मन्दिर में पर्दा लगाने द्वारा यहूदियों को उसकी अगम्य पवित्रता के बारे में सिखाया, जिसके पीछे उसका निवास स्थान - महापवित्र-स्थान था। इस स्थान में, वर्ष में एक बार, महायाजक के अलावा कोई मनुष्य प्रवेश नहीं कर सकता था अगर 2500 साल पहले आपने उन इस्राएलियों के पास जाकर यह कहा होता कि एक दिन परमेश्वर महापवित्र स्थान में सबके जाने के लिए एक रास्ता बनाने वाला है, तो वे इसे एक असम्भव बात मानते।

फिर भी, नई वाचा में, हमें यही विशेषाधिकार दिया गया है।

अब पर्दा इस तरह से फट गया है कि हम उसमें से सीधे पिता के सामने जा सकते हैं, और उसे "पिता" कहकर पुकार सकते हैं। नई वाचा में जो विशेषाधिकार हमें दिए हैं, उन्हें पूरी तरह समझने के लिए हमें पुरानी वाचा पढ़ने की ज़रूरत है।

उड़ाऊ पुत्र के दृष्टान्त में, परमेश्वर का पितामह-हृदय एक अद्भुत रूप में नज़र आता है। पुत्र अपने पिता की सम्पत्ति और नेकनामी को बर्बाद करने के बाद लौट कर आता है। पिता जैसे ही उसे देखता है, वह दौड़कर उससे लिपट जाता है। इसमें हम परमेश्वर पिता का चित्रण पाते हैं। बाइबल में यही एकमात्र ऐसी जगह है जहाँ हम परमेश्वर को दौड़ता हुआ पाते हैं - एक मन-फिराए हुए पापी को गले लगाने के लिए (लूका 15:20)!

यीशु ने पिता को लोगों के सामने इस तरह से चित्रित किया था। वह परमेश्वर के बारे में लोगों के मनों में से ऐसी सभी ग़लत परिकल्पनाओं को मिटा देना चाहता था जो शास्त्रियों और फरीसियों की शिक्षाओं ने उनके अन्दर डाल दी थीं।

मृतकों में से जी-उठने के बाद, जब मरियम मगदलीनी कब्र के बाहर यीशु से मिली थी, तब यीशु ने उससे कहा था, "मैं अपने पिता और तुम्हारे पिता के पास जाता हूँ" (यूहन्ना 20:17)।

मसीह के मरने और जी-उठने द्वारा, उसके शिष्य परमेश्वर के साथ एक ऐसे रिश्ते में पहुँचाए जा सके जिसका पहले कोई अस्तित्व ही नहीं था। अब वे परमेश्वर को स्वयं अपना पिता कह सकते थे। जैसे एक बच्चा अपने पिता की गोद में जा बैठता है, मनुष्यों का अब परमेश्वर के साथ वैसा ही आत्मीय सम्बंध बन गया था।

एक प्रेमी पिता

अनेक लोगों के मनों में यह ग़लत विचार रहता है कि पिता एक कठोर व्यक्ति है और सिर्फ यीशु ही है जो उनसे प्रेम करता है। यह सत्य को विकृत करने की एक शैतानी चाल है।

पिता के प्रेम ने ही यीशु को हमें पापों से बचाने के लिए भेजा। यीशु ने अपने शिष्यों से कहा, "पिता स्वयं तुमसे प्रेम करता है" (यूहन्ना 16:27)। उसने उनसे यह भी कहा कि उनका स्वर्गीय पिता अगर चिड़ियों और फूलों को इस तरह पालता-पोसता है, तो वह उनकी भी अवश्य ही देखभाल करेगा। इसलिए उनको चिंता करने की कोई ज़रूरत नहीं थी, क्योंकि पिता उनकी सारी ज़रूरतों के बारे में जानता था (मत्ती 6:26-34)।

उसने उनसे यह भी कहा कि अगर पार्थिव पिता अपने बच्चों को अच्छी वस्तुएं देना जानते हैं, तो उनका स्वर्गीय पिता भी अपने बच्चों को अच्छी वस्तुएं देगा (मत्ती 7:11)।

आप कह सकते हैं कि ये सब तो प्राथमिक बातें हैं। फिर भी, प्रार्थना में बहुत बार जब हम परमेश्वर के पास आते हैं, तो हमें पूरी तरह से यह भरोसा नहीं होता कि वह हमारे निवेदन को स्वीकार करेगा, क्योंकि हमारे प्रति उसकी कोमल, स्नेहशील, और

पितामयी देखभाल पर हमारा भरोसा नहीं होता। इस तरह, हम अपने अविश्वास द्वारा परमेश्वर को सीमित कर देते हैं।

प्रार्थना करते समय, क्या आपको वास्तव में यह यक़ीन होता है कि आप एक प्रेमी पिता से बात कर रहे हैं जो आपकी आवाज़ सुनकर हर्षित होता है और जो आपकी देखभाल करने में दिलचस्पी रखता है?

कुछ लोग ऐसा सोच सकते हैं कि परमेश्वर उनकी प्रार्थना सिर्फ तभी सुनेगा जब वे एक परिपक्व संत बन जाएंगे। एक पार्थिव पिता के साथ कैसा होता है? अगर उसके कुछ बच्चे हैं, तो क्या वह अपनी 3 साल की बेटी से ज़्यादा अपने 20 साल के पुत्र की बात सुनेगा? क्या वह अपनी छोटी-सी बेटी यह कह देता है, फ्मुझसे बात करने के लिए तुम अभी बहुत छोटी हो। मैं तुम्हारी बात नहीं सुन सकता?" हर्गिज़ नहीं। असल में, ज़्यादा सम्भावना यही है कि वह अपने बड़े बच्चे से ज़्यादा अपने छोटे बच्चे की बात सुनेगा। परमेश्वर के साथ भी ऐसा ही है।

वह कहता है, "छोटे से लेकर बड़े तक, सब मुझे (अपने पिता के रूप में) जानेंगे" (इब्रा. 8:11)। ध्यान दें कि पहले छोटों का उल्लेख किया गया है!

चाहे आपका कल ही नया जन्म क्यों न हुआ हो, आप साहस के साथ यह कहते हुए परमेश्वर के पास आ सकते हैं, "हे परमेश्वर, तू मेरा पिता है और मैं तेरा बच्चा हूँ, और इसलिए तुझसे बात करने का मुझे पूरा अधिकार है।" यीशु ने अपने शिष्यों को प्रार्थना में इस तरह से परमेश्वर के पास जाने के लिए उत्साहित किया था।

हम जब भी प्रार्थना करें, हम परमेश्वर को पिता के एक ऐसे रूप में देखते हुए उसके पास आएं जो हमसे प्रेम करता है, हमारी

देखभाल करता है, और हममें दिलचस्पी रखता है। इस तरह ही विश्वास पैदा होता है, और ऐसी प्रार्थना करने से कोई फायदा नहीं होता जिसमें कोई विश्वास न हो।

परमेश्वर एक भला परमेश्वर है। उसे अपने बच्चों का अच्छे दान-वरदान देने से ख़ुशी होती है।

भजन. 84:11 में बाइबल कहती है, "जो खरी चाल चलते हैं, उनसे वह कोई अच्छी वस्तु न रख छोड़ेगा।"

भजन. 37:4 कहता है, "परमेश्वर में मग्न रह, और वह तेरे मनोरथों को पूरा करेगा।" पुरानी वाचा की इन प्रतिज्ञाओं का नई वाचा में यीशु ने समर्थन किया है, उनकी पुष्टि की है, और उन्हें सत्यापित करते हुए उनके साथ दूसरी अनेक प्रतिज्ञाओं को भी जोड़ा है।

हमारे विश्वास की यही बुनियाद है - एक सचेत स्तर पर परमेश्वर को अपने प्रेमी पिता के रूप में स्वीकार करना।

एक पवित्र परमेश्वर

हमें परमेश्वर को अपने ऐसे पिता के रूप में पुकारना है जो स्वर्ग में है। वह न सिर्फ हमारा पिता है, वह सर्वशक्तिशाली परमेश्वर भी है। हम जब प्रार्थना में उसके पास आएं, तो हमें यह दोनों सच्चाइयाँ अपने मन में रखनी चाहिए।

हम उसके पास एक आदरयुक्त भय के साथ आते हैं क्योंकि वह एक ऐसा परमेश्वर है जो भस्म करने वाली आग है (इब्रा. 12:29)।

बहुत से मसीही परमेश्वर को एक दादा जी की तरह मानते हैं! आप जानते हैं कि दादा कैसे होते हैं - हमेशा अपने नाती-पोतों की सारी बुराइयों को अनदेखा करते हुए उनके प्रति सहनशीलता दर्शाते रहते हैं। अनेक मसीही यह सोचते हैं कि परमेश्वर ऐसा ही है जो

उनके पापों को गंभीरता से नहीं लेता। यह विचार बिलकुल ग़लत है। परमेश्वर एक पिता है।

लेकिन वह परमेश्वर भी है। वह वही है जिसके सम्मुख स्वर्ग के सराप अपने मुख छुपाए रहते हैं और लगातार यह पुकारते रहते हैं, "पवित्र, पवित्र, पवित्र..." (यशा. 6:3)। उन सरापों ने कभी पाप नहीं किया है। फिर भी परमेश्वर के पास आने पर उन्हें अपने मुख छुपाने पड़ते हैं, क्योंकि वे परमेश्वर की पवित्रता को नहीं देख सकते। इस बात से हमें परमेश्वर की उस असीम शुद्धता के बारे में थोड़ी-बहुत जानकारी मिलती है जिसे हमारे सीमित मन कभी नहीं समझ सकते।

बाइबल के कुछ ऐसे महान् पुरुषों के बारे में विचार करें जिन्होंने परमेश्वर का दर्शन पाया था। परमेश्वर की महिमा को देखने के बाद, यशायाह ने यह महसूस किया कि वह एक घिनौना पापी था (यशा. 6:5)। मूसा ने अपने मुख को ढांप लिया था क्योंकि वह परमेश्वर की तरफ देखने से डरता था (निर्ग. 3:6)। दानिय्येल को ऐसा लगा था मानो उसकी सारी शक्ति जाती रही थी (दानि. 10:8), और प्रेरित यूहन्ना एक मृतक के समान भूमि पर गिर पड़ा था (प्रका. 1:17)।

अधिकतर मसीही क्योंकि परमेश्वर को इस तरह नहीं जानते, इसलिए उनके जीवन उथले और सतही होते हैं।

परमेश्वर के पास जाते समय लोग दो तरीक़े अपनाते हैं। ऐसे लोग हैं जो यह सोचते हैं कि परमेश्वर अगम्य है; और उसके प्रेम के बारे में कुछ न जानते हुए, उन पर लगातार उसका भय छाया रहता है, और वे उसे तरह-तरह से प्रसन्न करने की कोशिशें करते रहते हैं। दूसरे छोर पर ऐसे लोग हैं जिन्होंने परमेश्वर के साथ

ऐसी अपवित्र जान-पहचान बढ़ा ली है, कि अब उनमें यह भय ही नहीं रहा है कि वह एक भस्म करने वाली आग है।

जो व्यक्ति एक आदरयुक्त भय के बिना परमेश्वर के पास आता है, वह उसे बिलकुल भी नहीं जानता। हम उसे जितना ज़्यादा जानेंगे, प्रार्थना में उसके पास आते समय हम उसका उतना ही आदर करेंगे और उसका भय मानेंगे। हमें उसके पास आने का साहस होता है क्योंकि वह हमारा पिता है। लेकिन हम उसके पास एक आदरयुक्त भय के साथ भी आते हैं, क्योंकि वह परमेश्वर है।

क्या आपने यह ध्यान दिया है कि पौलुस की 13 पत्रियों में (रोमियों से फिलेमोन तक), उसने पत्री की शुरूआत हमेशा इस अभिवादन से शुरु की है, "तुम्हे हमारे पिता परमेश्वर की ओर से कृपा और शांति मिले।" पौलुस उसे परमेश्वर और पिता दोनों ही रूप जानता था; और वह यह चाहता था कि दूसरे लोग भी उसे इस तरह ही जानें।

एक सर्वशक्तिशाली राजा

"तू जो स्वर्ग में है," हमें यह भी याद दिलाता है कि हम जिससे प्रार्थना कर रहे हैं, वह स्वर्गीय स्थानों में राज करता है और प्रभुसत्ता-सम्पन्न सर्वशक्तिशाली परमेश्वर है।

पुरानी वाचा में भी, परमेश्वर ने लोगों पर अपनी प्रभुसत्ता को प्रकट करना चाहा था। उसने उनसे कहा, "शान्त हो जाओ, और जान लो कि मैं ही परमेश्वर हूँ। जातियों के बीच मैं ही महान् ठहरूँगा, और पृथ्वी पर मैं ही महान् ठहरूँगा" (भजन. 46:10 - एन.ए.एस.बी. कोष्ठक)।

वह सारी पृथ्वी पर सर्वोच्च शासक के रूप में राज करता है, और इसलिए हम शान्त रह सकते हैं!

सभी जातियों और शक्तियों पर परमेश्वर की पूर्ण प्रभुसत्ता और यीशु मसीह का उन पर पूरा अधिकार शायद वह सत्य है जिसे आज कलीसिया को सबसे ज़्यादा समझने की ज़रूरत है।

आइए, हम एक ऐसी बात पर विचार करें जो बात हममें से बहुत से लोगों के जीवन में हो चुकी है। हम सभी जानते हैं कि सोवियत संघ बीते समय में इस्राएल के सबसे बड़े शत्रुओं में से एक था। अगर इस्राएल पूरी तरह से नाश हो जाता तो सोवियत रूस को बड़ा हर्ष होता। फिर भी मई 1948 में, जब ग्रेट ब्रिटेन यहूदियों को फिलिस्तीन की भूमि देने की अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने में असफल रहा, तब सोवियत रूस के मत के द्वारा ही संयुक्त राष्ट्र इस्राएल को एक राज्य के रूप में स्थापित कर सका था। यक़ीनन, रूस का उद्देश्य अंग्रेज़ों को फिलिस्तीन से बाहर निकालना था। फिर भी, इससे यह साबित हो गया कि एक तथाकथित "मसीही" देश द्वारा उसका वादा तोड़ दिए जाने के बाद, परमेश्वर उसकी सर्वसत्ता मे उसके वचन पूरा करने के लिए, एक निरिश्वरवादी देश को भी इस्तेमाल कर सकता है कि वह यहूदियों को उनके देश में लौटने में मदद करे।

परमेश्वर उसके सिंहासन पर विराजमान है, और संसार की हरेक बात पर उसका पूरा अधिकार है। आने वाले दिनों में, हमारे आसपास होने वाली सभी बातों के बीच में, हमारे हृदय सिर्फ तभी शान्त रह सकेंगे जब हमारा विश्वास इस सत्य में जड़ पकड़े रहेगा। बाइबल हमें सरकार के लिए प्रार्थना करने को कहती है (1 तीमु. 2:1,2)। अगर हमें यह विश्वास नहीं है कि हमारी प्रार्थनाओं से वर्तमान हालातों में कुछ बदलाव हो सकता है, या अगर हमें यह भरोसा नहीं है कि परमेश्वर के पास इतना अधिकार है कि वह प्रार्थनाओं के जवाब में सरकार के फैसलों को, बल्कि चुनाव के

समय मत (वोट) डालने की प्रक्रियाओं को भी बदल सकता है, तो कम-से-कम मैं तो अधिकारियों के लिए प्रार्थना करने में अपना समय बर्बाद नहीं करूँगा। हमने बीते समय में अपने देश के लिए प्रार्थनाएं की हैं, और यह देखा है हमारे देश में परमेश्वर के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए, हमारी प्रार्थनाओं के चमत्कारिक परिणाम आए हैं!

फ्परमेश्वर के हाथों में राजा का मन जल की नालियों की तरह होता है, वह उसे जहाँ चाहता है, मोड़ लेता है" (नीति. 21:1)। अगर हम प्रार्थना करें, तो परमेश्वर संसार के सबसे बड़े शासक को भी उसके फैसले बदलने के लिए मजबूर कर सकता है।

अगर भारत का प्रधानमंत्री आपका पिता होता, तो आपके जीवन की कठिनाइयों और समस्याओं के प्रति आपके मनोभाव में कितना बड़ा बदलाव आ जाता। अगर आपका मकान-मालिक आपको धमकी देता, या आपका बॉस आपका जीना मुश्किल कर देता, या कोई आपके साथ अन्याय करता, या आपको फौरन किसी चीज़ की ज़रूरत होती, तो क्या आपको कोई चिंता होती? नहीं। आपको फोन उठाकर सिर्फ अपने पिता से कहने की ज़रूरत होगी, और वह समस्या दूर हो जाएगी।

क्या प्रभु भारत के प्रधान-मंत्री से बड़ा नहीं है?

अपने जीवन में जब हम किसी समस्या का सामना करते हैं, तब हम क्या करते हैं? क्या हम यह कहते हैं, "ठीक है, मैं अपने स्वर्गीय पिता को इसके बारे में बता दूँगा। वह सारी सृष्टि पर राज करता है, और वह इस मुश्किल को ज़रूर दूर कर देगा"?, या हम यह कहते हैं, "कितना अच्छा होता अगर मैं किसी प्रभावशाली मंत्री या ऐसे पुलिस अधिकारी को जानता जो इस समय मेरी मदद कर देता"? हमारी पहली प्रतिक्रिया क्या होती है?

जब जीवन के व्यावहारिक मामलों की बात आती है, तो बहुत से मसीही निरिश्वरवादी होते हैं। वे सभाओं में, और अपने घरों में भी, परमेश्वर पर विश्वास होने की बात करते हैं। लेकिन जब पृथ्वी के मामलों की बात आती है, तो वे किसी भी निरीश्वरवादी की तरह, भयभीत और चिंतित हो जाते हैं।

जितना भय आज छाया हुआ है, इतना पहले कभी नहीं था। यीशु ने कहा कि अंतिम दिनों में भय और संसार पर घटने वाली सारी घटनाओं के बारे में यह सोच-सोचकर मनुष्यों के हाथ-पैर ढीले पड़ जाएंगे, कि अब आगे क्या होने वाला है (लूका 21:26)। लेकिन ठीक इसी समय में, हमसे निर्भय होकर अपने सिर उठाने और मसीह के आने का इंतज़ार करने के लिए कहा गया है (लूका 21:28)।

पूरी सुरक्षाः

हमारा एक सर्वशक्तिशाली पिता है, इसलिए यक़ीनन हम अनाथ नहीं है। इसलिए हम अनाथों की तरह बर्ताव न करें। जब आप भयभीत और चिंतित हो जाते हैं, तब आप अपने स्वर्गीय पिता का अपमान करते हैं, क्योंकि तब मानो आप यह कहते हैं कि आपका उसमें कोई भरोसा नहीं है, कि आपको ऐसा लगता है कि आपके मुश्किल हालात में वह आपके लिए कुछ नहीं कर सकता, या तो इस वजह से क्योंकि वह ऐसा करने में असमर्थ हैं, या क्योंकि उसे आपकी परवाह नहीं है! यह एक अविश्वासी हृदय की साक्षी होती है।

अगर आप वास्तव में यह विश्वास करते कि परमेश्वर आपसे प्रेम करता है और आपकी परवाह करता है और वह सर्वशक्तिशाली है, तो आपको चिंता करने की क्या ज़रूरत होती? दो चिड़ियों के बारे में एक कविता है जो अक्सर मेरे विश्वास को चुनौती देती हैः

एक गोरैया ने दूसरी गोरैया से कहा, “मुझे यह जानना है,
कि चिंता से भरे ये मनुष्य,
क्यों इधर-उधर भागते हैं, और क्यों ऐसी चिंता करते हैं?”
दूसरी गोरैया ने जवाब दिया, “मुझे लगता है,
कि उनका ऐसा कोई स्वर्गीय पिता नहीं है,
जो उन्हें इस तरह संभाले जैसा तुम्हें और मुझे संभालता है।”

यीशु ने कहा, “मत डरो, तुम बहुत सी गोरैयों से भी ज़्यादा मूल्यवान हो” (मत्ती 10:31)। अगर यीशु हमारे जीवन का प्रभु है, और अगर हमारी पृथ्वी पर परमेश्वर की महिमा करने के अलावा दूसरी कोई महत्वकांक्षा नहीं है, तब हम यक़ीन के साथ कह सकते हैं कि हमारे आसपास चाहे कुछ भी होता रहे, “सब बातें मिलकर हमारे लिए भलाई को ही पैदा करेंगी” (रोमि. 8:28)।

परमेश्वर यह चाहता है कि उसका जो पितामय प्रेम और सुरक्षा हमारे लिए है, हम उस प्रेम की पूरी सुरक्षा में रहें। हमें इस बात में आश्वस्त रहना चाहिए कि हमारे लिए उसकी देखभाल हमारे पैदा होने से भी पहले तैयार हो चुकी थी। वही है जिसने यह तय किया कि हमारे माता-पिता कौन होंगे, हमारा मनोभाव कैसा होगा, हमारी पढ़ाई-लिखाई कितनी होगी, हम कहाँ रहेंगे, आदि। एक बार जब हमें इन बातों का यक़ीन हो जाता है, तब हम यह पाते हैं कि हम अपने हालातों, अपने माता-पिता, या दूसरे किसी के भी खिलाफ़ कोई शिकायत किए बिना पूरे विश्राम में रह सकते हैं। (भजन. 139:16)।

परमेश्वर मनुष्य के क्रोध को भी अपनी प्रशंसा के लिए इस्तेमाल कर लेता है (भजन. 76:10)। इस बात का सबसे स्पष्ट उदाहरण युसुफ के जीवन में से मिलता है। अगर आप उत्पत्ति के अध्याय

37-50 पढ़ेंगे, तो उनमें आप देख सकेंगे कि लोगों ने युसुफ के साथ जितनी भी बुराइयाँ कीं, परमेश्वर की सर्वशक्ति ने उन सभी को मिलाकर युसुफ के लिए भलाई पैदा की, और वह सिर्फ इसलिए हुआ क्योंकि युसुफ अपने परमेश्वर के प्रति विश्वासयोग्य था।

परमेश्वर ने इस्राएलियों से यह प्रतिज्ञा की थी जो अपने माता-पिता का आदर करेगा, वह पृथ्वी पर बहुत वर्षों पर जीवित रहेगा (इफि. 6:2,3)। जब तक परमेश्वर के लिए यह सम्भव न होता कि वह एक व्यक्ति को उसके किसी शत्रु द्वारा मार डाले जाने से, कैंसर से, या और किसी दुर्घटना से बचा कर रख पाता, तब तक वह ऐसी प्रतिज्ञा कैसे कर सकता था? परमेश्वर आज भी यह करने में सक्षम है। यह सिर्फ हमारा अविश्वास है जो हमें परमेश्वर की सर्वशक्तिशाली सामर्थ्य के लाभ का आनन्द मनाने से रोकता है।

एक परिवार का पिताः

अंत में, हमें यह याद रखना है कि यीशु ने यह कहा था कि हमें परमेश्वर को "हे मेरे पिता" नहीं बल्कि "हे हमारे पिता" कहना है। यहाँ एक ज़रूरी मुद्दा है। यह एक पारिवारिक प्रार्थना है। मेरे स्वर्गीय पिता के बहुत से बच्चे हैं, और उसके पास आते समय मुझे यह समझने की ज़रूरत होती है। मैं उसके बच्चों में से सिर्फ एक बच्चा हूँ। इस परिवार में कोई किसी से ज़्यादा विशेषाधिकार वाला नहीं है। हमारे पिता के लिए हम सब बराबर हैं।

इस वजह से, अगर ज़मीनी स्तर पर इस परिवार में अपने साथी-विश्वासियों से मेरा रिश्ता अच्छा नहीं होगा, तो फिर ऊपरी स्तर पर परमेश्वर के साथ भी मेरा रिश्ता अच्छा नहीं हो सकता। सूली में दो लकड़ियाँ थीं - एक सीधी और एक आड़ी। सहभागिता के भी दो पक्ष हैं - एक सीधा और एक आड़ा। दूसरे शब्दों में, अगर

परमेश्वर के परिवार में हमारे अपने भाइयों व बहनों के साथ मेरा सम्बंध में अच्छा नहीं है, अगर मैं उनमें से कुछ के साथ बात भी नहीं करता हूँ, अगर मुझे उनमें से किसी से कुछ शिकायत है, या मैंने किसी को क्षमा नहीं किया है, तब मैं परमेश्वर के पास आकर उसे "हे हमारे पिता" नहीं कह सकता। क्या वह उसका भी पिता नहीं है जिसे मैंने क्षमा नहीं किया है?

अगर हम मसीह की देह में किसी को भी तुच्छ जानते हैं तो हम परमेश्वर के पास नहीं आ सकते। याद करें कि उस फरीसी ने कैसे प्रार्थना की थी, "परमेश्वर, मैं तुझे धन्यवाद देता हूँ कि मैं दूसरे लोगों की तरह नहीं हूँ, और न ही इस चुंगी लेने वाले की तरह हूँ" (लूका 18:11)। ऐसे मनोभाव के साथ हम प्रार्थना करने के लिए परमेश्वर के पास कभी नहीं आ सकते। अगर आप अपने साथी-विश्वासियों के स्तर तक नीचे उतरना नहीं चाहते, और यह नहीं समझते कि जहाँ परमेश्वर का सम्बंध है, वहाँ आपका सामाजिक स्तर, आपकी शिक्षा और आपकी आत्मिकता भी आपको किसी भी तरह उनसे ऊँचा नहीं उठाती, तो आप प्रभु की प्रार्थना नहीं कर सकते। हम सभी एक ही परिवार के सदस्य हैं।

परमेश्वर चाहता है कि हरेक स्थानीय मण्डली में एक ऐसा वातावरण हो जैसा एक परिवार में होता है, जहाँ सभी भाई व बहनें परिवार के सदस्यों की तरह हों, और जिसमें आने वाले परदेसियों को भी ऐसा महसूस हो कि वे एक परिवार में आ रहे हैं। जब ऐसा नहीं होता, तो वह इस वजह से कि परमेश्वर के बच्चे वह समझने में नाकाम रहे हैं जो यीशु ने इस प्रार्थना में सिखाया है।

इसलिए, हम जब भी प्रार्थना करें, हम इस आधार पर परमेश्वर के पास आएं - उसके पितापन और उसकी प्रेमभरी देखभाल को जानते हुए, हम साहस के साथ उसके पास आएं; वह एक पवित्र परमेश्वर

है, यह जानते हुए एक आदरयुक्त भय के साथ उसके पास आएं; वह सब बातों पर प्रभुत्व रखने वाला और स्वर्ग में रहने वाला सर्वशक्तिशाली परमेश्वर है, इस विश्वास के साथ उसके पास आएं; और वह एक बड़े परिवार का पिता है और हम उस परिवार का हिस्सा हैं, यह जानते हुए उसके पास आएं।

अध्याय 3

परमेश्वर के नाम की महिमा

“तेरा नाम पवित्र माना जाए”

प्रार्थना मूल रूप में जीवन का मामला है; इस वजह से ही यीशु ने हमें निरन्तर प्रार्थना करने के लिए कहा है (लूका 18:1)। इसका अर्थ यह नहीं है कि हमें हर समय घुटनों पर ही रहना है। ऐसे मौक़े आते हैं जब हमें कुछ समय के लिए घुटनों पर रहना पड़ता है। लेकिन हमें निरन्तर प्रार्थना की आत्मा में रहना चाहिए। उसका प्रभाव हमारे पूरे जीवन पर बने रहना चाहिए।

प्रार्थना में हमारी सही प्राथमिकताएंः

यीशु ने जो प्रार्थना अपने शिष्यों को सिखाई, वह यह प्रकट करती है कि हमारे जीवन की प्राथमिकताएं और हमारी सबसे बड़ी अभिलाषाएं क्या होनी चाहिए। पहली तीन बातों का सम्बंध परमेश्वर से हैः “तेरा नाम पवित्र माना जाए, तेरा राज्य आए, तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में पूरी होती है, वैसे ही पृथ्वी पर भी हो।” अगली तीन बातें हमसे सम्बंधित हैंः “हमारे प्रतिदिन की रोटी हमें दे, हमारे अपराधों को क्षमा कर, जैसे हम भी अपने अपराधियों को क्षमा करते हैं। हमें परीक्षा में न ला, बल्कि बुराई से बचा।”

यहाँ ध्यान देने लायक़ एक बहुत महत्वपूर्ण बात है। प्रार्थना में हमारे निवेदन प्राथमिक रूप से हमारी समस्याओं से जुड़े हुए नहीं होने चाहिए। हमारी बहुत सी समस्याएं हो सकती हैं, जिनमें शायद कुछ आत्मिक समस्याएं भी होंगी, लेकिन हमारी प्रार्थना में उनका

पहला स्थान नहीं होना चाहिए। पहला स्थान परमेश्वर की महिमा का है।

अगर हम अपने जीवनों को जाँचें और यह देखें कि परमेश्वर के सामने अपने हृदय की अभिलाषाएं व्यक्त करते समय हमारे हृदयों में वे कौन सी बातें हैं जो पहले स्थान पर रहती हैं, तो हम यह पाएंगे कि हमने शायद ही कभी इस क्रम के अनुसार प्रार्थना की है। यह दर्शाता है कि हमने यीशु की शिक्षा को गंभीरता से नहीं लिया है। क्योंकि अगर हमने परमेश्वर के वचन को सही तरह और ध्यान देकर पढ़ा होता, तो हमें यह समझ आ गया होता कि यीशु ने हमें सिर्फ एक ही तरीक़े से प्रार्थना करना सिखाया है - परमेश्वर और उसकी महिमा को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए।

परमेश्वर में केन्द्रित रहनाः

परमेश्वर ने मनुष्य की रचना इसी तरह की है। स्वयं परमेश्वर को शीर्ष (सिर) होना था और मनुष्य को शीर्ष की अधीनता में एक ऐसी देह होकर रहना था। हमारी देह में, सिर ऊपर की तरफ है - सिर्फ शारीरिक रूप में नहीं, बल्कि वह देह पर राज भी करता है। जब तक सिर हमारी देह के कामों को उसके नियंत्रण में रखता है, तब तक सब ठीक रहता है। लेकिन जब एक व्यक्ति का सिर (उसका मस्तिष्क) उसकी देह को नियंत्रित नहीं कर पाता, तो हम ऐसे व्यक्ति को मानसिक तौर पर अंसतुलित या पागल कहते हैं। परमेश्वर ने यह कभी नहीं चाहा था कि मनुष्य ऐसा बन जाए।

प्रभु यह चाहता है कि मनुष्य आत्मिक रूप में "सीधा खड़ा होकर चले" (लैव्य. 26:13)। अनेक विश्वासियों की यह समस्या है कि उनके सिर उनकी सही जगह पर नहीं हैं। परमेश्वर की उनके जीवनों में जो जगह होनी चाहिए, वे उसे वह जगह नहीं देते। अगर परमेश्वर का हमारे जीवनों में, हमारी लालसाओं में, और हमारी

अभिलाषाओं में पहला स्थान होता, और अगर उसकी महिमा करना हमारे जीवनों का आवेग होता, तो हम प्रार्थना में जब भी परमेश्वर के पास जाते, तो वह हर बार अपने आपको साफ तौर पर प्रकट करता।

हमारे जीवनों में बहुत सी बातों के सही जगह पर न होने, और उनके उलझे हुए और अस्त-व्यस्त होने की वजह यही है, कि हमने परमेश्वर को पहला स्थान नहीं दिया है। और जब हम प्रार्थना करते हैं, तो हम दाता से ज़्यादा दान की अभिलाषा करते हैं। एक आत्मिक मनुष्य का चिन्ह् यह होता है कि वह दान से ज़्यादा दाता की अभिलाषा करता है, और दान न पाने पर भी वह दाता से प्रेम करना जारी रखता है।

हम एक आत्मिक मन-मिज़ाज वाले व्यक्ति हैं या नहीं, यह परखने का एक तरीक़ा यह भी हैः जब परमेश्वर हमारी अपेक्षा के अनुसार हमारी प्रार्थना का जवाब नहीं देता, क्या हम तब भी प्रसन्न और संतुष्ट रहते हैं?

ऐसा क्यों है जब परमेश्वर अनेक विश्वासियों की प्रार्थना का जवाब नहीं देता, तो वे कुड़कुड़ाते और शिकायत करते हैं? इसलिए क्योंकि उन्हें सिर्फ उसके दान-वरदान और उपहार चाहिए। उन्हें दाता में ज़्यादा दिलचस्पी नहीं होती। वे उड़ाऊ पुत्र की तरह होते हैं, जो अपने पिता से वह पा लेने के बाद जो वह चाहता था, उसका स्वयं उपभोग करने के लिए चला गया। वह सिर्फ अपने पिता के उपहार चाहता था। जब सब कुछ ख़त्म हो गया तब वह अपने पिता के पास सिर्फ इसलिए लौटकर आया क्योंकि उसे और उपहार चाहिए थे (लूका 15:11-24)।

यह ध्यान दें, कि प्रभु की प्रार्थना का पचास प्रतिशत हिस्सा परमेश्वर और उसकी महिमा के बारे में है। ऐसा नहीं है कि हम

सिर्फ एक धार्मिक परम्परा के अनुसार ऐसा कहते हैं, "प्रभु, सबसे पहले मैं यह चाहता हूँ कि तेरे नाम की महिमा हो," और यह कह देने के बाद, फिर अगले एक घण्टे तक उसे उन सब वस्तुओं की सूची पढ़ कर सुनाते रहें जिनकी हमें ज़रूरत है। यहाँ हम प्रार्थना के किसी ख़ास तरीक़े की नहीं बल्कि एक बदले हुए मनोभाव और हमारे मनों के पुनर्गठित होने की बात कर रहे हैं कि फिर हमारी सोच में परमेश्वर और उसकी महिमा का स्थान पहला हो जाए।

स्वःकेन्द्रित होना - सारे पाप की जड़ः

परमेश्वर ने सारी सृष्टि में सब कुछ स्वयं उसमें (परमेश्वर में) केन्द्रित रहने के लिए बनाया था।

सूर्य, चन्द्रमा, सभी ग्रहों और तारों के बारे में सोचें। उनकी अपनी कोई इच्छा नहीं है। वे एक अंतर्निहित रूप में अपने सृष्टिकर्ता का आज्ञापालन करते हैं। पृथ्वी कोई सवाल किए बिना सूर्य की परिक्रमा करती है। और सभी तारे भी हज़ारों सालों से अपनी कक्षाओं में घूम रहे हैं। परमेश्वर ने उनके लिए जो रास्ता तय किया हुआ है, वे लगातार उसी रास्ते पर चलते हैं। लेकिन परमेश्वर ऐसी निर्जीव वस्तुओं में आनन्दित नहीं होता। वह पुत्र चाहता है।

उसने मुक्त इच्छा शक्ति के साथ पहले स्वर्गदूतों की रचना की थी। लूसिफर ने, (स्वर्गदूतों के प्रधान ने) परमेश्वर के खिलाफ़ विद्रोह किया क्योंकि वह परमेश्वर में केन्द्रित रहना नहीं चाहता था। जब एक सृजी हुई रचना ने एक ऐसा जीवन जीना चाहा जिसे स्वयं उसमें केन्द्रित था, तब पाप का जन्म हुआ (यशा. 14:12-15)।

यह समझना हमारे लिए बहुत ज़रूरी है, क्योंकि अगर हमें यह समझना है कि पाप क्या होता है, तो हमें यह देखना होगा कि उसकी शुरुआत कैसे हुई थी। तब हम यह जान सकेंगे कि पाप

सिर्फ व्यभिचार, हत्या, क्रोध या ईर्ष्या, आदि ही नहीं है। पाप का मूल स्वकेन्द्रित होने में है।

स्व-केन्द्रित होने ने एक स्वर्गदूत को एक ही पल में शैतान बना दिया था, और आज भी स्व-केन्द्रियता लोगों को शैतान बना देगी। स्व-केन्द्रियता ने ही आदम को एक पापमय, पतित व्यक्ति बनाया था। अदन की वाटिका के दोनों वृक्ष - जीवन का वृक्ष और भले व बुरे के ज्ञान का वृक्ष - उन दो सिद्धान्तों के प्रतीक थे जिनके अनुसार आदम अपना जीवन व्यतीत कर सकता था - पहला, परमेश्वर-केन्द्रित जीवन, और दूसरा, स्व-केन्द्रित जीवन। शैतान ने हव्वा को वर्जित पेड़ में से यह कहते हुए खाने के लिए प्रेरित किया था, फ्तुम्हारी आँखें खुल जाएंगी, और तुम स्वयं परमेश्वर के समान बन जाओगे। फिर तुम उससे अलग एक स्वतंत्र रूप में अपना जीवन व्यतीत कर सकोगे।" आदम और हव्वा ने वही जीवन व्यतीत करने का चुनाव किया - परमेश्वर से अलग, स्वयं में केन्द्रित।

परमेश्वर हमसे उसमें केन्द्रित होने के लिए इसलिए नहीं कहता क्योंकि वह स्वयं अपने लिए हमसे कुछ चाहता है। नहीं। वह हमारी ही भलाई के लिए यह कहता है कि हम अपने जीवन में उसे पहले स्थान पर रखें। अगर हम परमेश्वर की आराधना नहीं करेंगे, तो हम अवश्य ही किसी और की आराधना करने वाले बन जाएंगे - या तो अपनी स्वयं की, या शैतान की, या संसार की। इसलिए झूठी आराधना द्वारा स्वयं हमारा नाश करने से हमें बचाने, हमारा उद्धार करने, और हमारे ही भले के लिए, परमेश्वर यह कहता है, "मेरी आराधना करना सीखो, मुझमें केन्द्रित रहना सीखो।"

परमेश्वर ने पृथ्वी को सूर्य की परिक्रमा करने के लिए रचा। अगर ऐसा होता कि पृथ्वी एक दिन यह चुनाव करती कि उसने सूर्य

बहुत परिक्रमा कर ली है और अब सूर्य को उसकी परिक्रमा करनी चाहिए, तब क्या होता? इस तरह पृथ्वी परमेश्वर द्वारा ठहराए गए नियम को तोड़ देती और फिर कोई अलग-अलग मौसम नहीं होते, और जल्दी ही पृथ्वी पर से सारा जीवन नष्ट हो जाता। परमेश्वर के नियमों को तोड़ने का नतीजा हमेशा मौत की तरफ ले जाता है।

जगत में आत्मिक मृत्यु भी इसी तरह आई थी। परमेश्वर ने मनुष्य को इसलिए रचा था कि वह उसमें (परमेश्वर में) केन्द्रित रहे। लेकिन मनुष्य ने परमेश्वर को उसके केन्द्र के रूप में स्वीकार नहीं किया, और वह उसी दिन मर गया। जब यह बात हमें समझ आ जाती है, तब हम यह समझ लेते हैं कि उद्धार का अर्थ स्व-केन्द्रित होने से बचाया जाना है।

नई वाचा यह सिखाती है कि अगर एक मनुष्य को उद्धार पाना है, तो पहले उसे मन फिराना है। मन-फिराव का अर्थ है जीने के हमारे पुराने तरीक़े से मुड़ जाना। इसका अर्थ शराब पीने या जुआ खेलने जैसी कुछ बुरी आदतों को छोड़ देने से बहुत बढ़कर है। हमारा पुरान जीवन स्व-केन्द्रित है, और मन फिराने का अर्थ यह कहना है, "प्रभु, मैं स्वयं अपने आपमें केन्द्रित रहते हुए थक चुका हूँ, इसलिए अब मैं तेरी तरफ फिरना और तुझमें केन्द्रित रहना चाहता हूँ।"

स्व-केन्द्रियता से उद्धारः

यीशु हमें पाप से बचाने के लिए आया था। दूसरे शब्दों में, वह हमें स्व-केन्द्रियता से बचाने के लिए आया था। पुरानी वाचा में 'पाप' शब्द की जगह 'स्व-केन्द्रियता' को रख दें, और फिर देखें कि बाइबल के अनेक भागों में से क्या अर्थ सामने आता है। "पाप तुम पर राज नहीं करेगा" बदल कर " स्व-केन्द्रियता तुम पर राज

नहीं करेगी" हो जाता है (रोमि. 6:14)। परमेश्वर की उसके लोगों के लिए यही अभिलाषा है।

फिर भी, अगर हम अपने जीवनों को जाँचें, तो हम पाएंगे कि हमारी सबसे पुण्य अभिलाषाओं में भी स्व-केन्द्रियता मौजूद होती है। अगर हम पवित्र आत्मा की सामर्थ्य को हमें एक महान् प्रचारक या एक महान् चंगाई देने वाला आदि बनाने के लिए इस्तेमाल करना चाहते हैं, तब परमेश्वर से यह कहना भी एक स्व-केन्द्रित अभिलाषा होगी कि वह हमें उसके पवित्र आत्मा से भर दे। यह उतनी ही स्व-केन्द्रित अभिलाषा है जैसे संसार में महान् होने की अभिलाषा होती है। क्या आपको यह नज़र आ रहा है कि सबसे पवित्र जगहों में भी पाप कैसे प्रवेश कर जाता है?

यही वजह है कि यीशु ने हमें सबसे पहले पवित्र-आत्मा से भरे जाने के लिए भी नहीं, बल्कि यह प्रार्थना करना सिखाया कि परमेश्वर का नाम पवित्र माना जाए।

सिर्फ एक ऐसा व्यक्ति ही इस प्रार्थना को पूरी ईमानदारी के साथ कर सकता है जो एक सच्चे रूप में आत्मिक व्यक्ति है। यह सच है कि इस प्रार्थना को कोई भी दोहरा सकता है। एक तोता भी ऐसा कर लेगा। लेकिन अपने हृदय की गहराइयों में से इसे एक सार्थक रूप में करने के लिए, पूरी भक्ति के साथ परमेश्वर को समर्पित होने की ज़रूरत होगी जहाँ वह हमारे जीवन का पहले स्थान पर होगा, जहाँ हम उसमें केन्द्रित होंगे, और जहाँ हम उसकी आशिषों से ज़्यादा स्वयं उसे चाहने वाले होंगे। अगर वह हमें उसके उपहार/दान-वरदान देता है, तो वह एक भली बात है; लेकिन अगर वह हमें उसके उपहार/दान-वरदान नहीं देता, तो हमारे लिए वह भी भला है, क्योंकि हम स्वयं परमेश्वर को चाहते हैं, उसके दान-वरदानों को नहीं।

परमेश्वर ने इस्राएलियों को यह क्यों सिखाया कि वे उससे उनके सारे हृदय से प्रेम करें और उनके पड़ौसियों के साथ अपने समान प्रेम करें? सिर्फ उन्हें उनकी स्व-केन्द्रियता से मुक्त करने के लिए। JOY (जे-ओ-वाय-) शब्द का एक परिवर्णी काव्य है (ऐसे शब्द जिनके पहले अक्षर से एक नई शब्द-रचना होती है)। J - Jesus को पहले स्थान पर रखें, O - Others - दूसरों को उसके बाद रखें, और Y - You - अपने आपको सबसे अंत में रखें। तब आपको Joy आनन्द प्राप्त हो सकता है।

परमेश्वर हमेशा आनन्द से भरा रहता है। स्वर्ग में कोई दुःख या चिंता नहीं है क्योंकि वहाँ सब कुछ परमेश्वर में केन्द्रित है। स्वर्गदूत हमेशा आनन्द मनाते रहते हैं क्योंकि वे हमेशा परमेश्वर में केन्द्रित रहते हैं।

अगर आज हममें आनन्द, शांति और बहुत से आत्मिक गुणों की कमी है, तो उसकी वजह यही है कि हमारा केन्द्र सही नहीं है। हम अपने उद्देश्य पूरे करने के लिए परमेश्वर को इस्तेमाल करना चाहते हैं। और हमारी प्रार्थना भी कुछ इस तरह की बन जाती है, फ्प्रभु, मेरा व्यापार समृद्ध बना दे... मुझे पदोन्नत होने में मेरी मदद कर... मुझे एक और अच्छा घर दे दे" आदि। हम चाहते हैं कि परमेश्वर हमारा सेवक बन जाए, और वह पृथ्वी पर हमारे जीवनों को आरामदेह बना दे - बिलकुल अलाद्दीन के चिराग़ के जिन्न की तरह।

अनेक विश्वासी इस तरह के परमेश्वर से ही प्रार्थना करते हैं - ऐसा परमेश्वर जो उन्हें इस संसार में आगे बढ़ाने और फायदे पहुँचाने का एक ज़रिया है। लेकिन नई वाचा का परमेश्वर वह नहीं है जो आपको ओलम्पिक्स में 100 मीटर की दौड़ जीतने या किसी व्यापारिक सौदे में आपके प्रतियोगी को हराने में मदद करेगा।

हमारी प्रार्थनाएं यह प्रकट करती हैं कि हम कितने स्व-केन्द्रित होते हैं।

बाइबल कहती है, "परमेश्वर में आनन्दित रह, तब वह तेरे सब मनोरथों को पूरा करेगा" (भजन. 37:4)। परमेश्वर में आनन्दित रहना परमेश्वर को अपने जीवन के केन्द्रीय स्थान में रखना है। इस तरह, सिर्फ एक परमेश्वर-केन्द्रित व्यक्ति ही उसके हृदय की सारी अभिलाषाओं को पूरा होता पाएगा। "जो खरी चाल चलते हैं (अर्थात् उनसे जिनके सिर उसकी सही जगह पर हैं - जिनके जीवन परमेश्वर के नियंत्रण में हैं), परमेश्वर उनसे कोई अच्छी वस्तु नहीं रख छोड़ेगा" (भजन. 84:11)।

"एक धर्मी-जन की प्रभावशाली और उत्साह-जनक प्रार्थना से बहुत कुछ हासिल हो सकता है" - क्योंकि एक धर्मी-जन परमेश्वर-केन्द्रित व्यक्ति होता है (याकूब 5:16)। इसके विपरीत, एक स्व-केन्द्रित व्यक्ति की उत्साही प्रार्थना, चाहे वह पूरी रात भी प्रार्थना क्यों न करे, कुछ हासिल नहीं कर सकती। हम जिस तरह का जीवन जीते हैं, वही हमारे द्वारा की जाने वाली प्रार्थना का मूल्य तय करती है।

इस वजह से ही हमारे जीवन की पहली तीन लालसाएं यही होनी चाहिएः "हे पिता, तेरा नाम पवित्र माना जाए। तेरा राज्य आए। तेरी इच्छा पूरी हो।"

हमारे और भी बहुत से निवेदन हो सकते हैं, जैसे "मेरे पीठ के दर्द को चंगा कर दे, मुझे रहने के लिए एक अच्छा घर ढूंढने में मदद कर दे, मेरे बेटे को नौकरी पाने में मदद कर दे" आदि। ये सब अच्छे प्रार्थना-निवेदन हैं। लेकिन अगर आप यह कह सकें, "पिता, अगर तू मेरी इन प्रार्थनाओं का जवाब न भी दे, तो भी मेरी प्रमुख

इच्छा यही है कि तेरा नाम पवित्र माना जाए" - तब आप एक आत्मिक व्यक्ति हैं।

परमेश्वर के नाम की महिमाः

इस पहले निवेदन का क्या अर्थ है, "तेरा नाम पवित्र माना जाए"? "पवित्र" शब्द के मूल में से नई वाचा के और भी शब्द निकले हैं जैसे "पवित्रीकरण", "महिमा", "संत" आदि। इसका अर्थ है "अलग कर देना" - अर्थात्, "हरेक ऐसी बात से अलग कर देना जो बुरी और अशुद्ध है।"

इस तरह, निवेदन यह है, "हे पिता, तेरे नाम का भय माना जाए और वह पूज्य हो और उसका आदर हो और वह महिमा पाए।" दूसरे शब्दों में, क्योंकि यह पहला निवेदन है, इसलिए इसमें यह संकेत है कि हमारे हृदयों की सबसे बड़ी लालसा यही है कि पृथ्वी पर परमेश्वर के नाम का भय माना जाए। क्या वास्तव में हमारे हृदय की यही लालसा है?

मनुष्य के दोष को एक ही वाक्य में समाहित किया जा सकता हैः "उनकी आँखों के समक्ष परमेश्वर का भय है ही नहीं" (रोमियों 3:18)। "परमेश्वर का भय बुद्धि का आरम्भ है" (नीति. 1:7)। दूसरे शब्दों में, वह मसीही जीवन की वर्णमाला है। अगर आप अपना क- ख- ग- नहीं सीखेंगे, तो आप रेखा-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, भौतिक शास्त्र या कुछ भी नहीं सीख सकेंगे। इसी तरह, अगर आप मसीही जीवन का क- ख- ग- - परमेश्वर का भय मानना नहीं सीखेंगे, तो आप कोई आत्मिक उन्नति नहीं कर सकेंगे।

हमारी आत्मिकता की एक अच्छी परख यह हो सकती है कि हमारी दिलचस्पी परमेश्वर के नाम की महिमा करने में है या स्वयं हमारे नाम को ऊँचा उठाने में है। अगर आपको यह पता चले कि कोई आपके नाम को बर्बाद कर रहा है, तो आपकी क्या प्रतिक्रिया होगी?

शायद क्रोध से भर जाएंगे? और जब आपको यह पता चलता है कि यीशु का नाम बदनाम हो रहा है, तब आपकी प्रतिक्रिया क्या होती है? आज परमेश्वर के लोगों के व्यवहार की वजह से ग़ैर-मसीहियों में परमेश्वर के नाम की निंदा की जाती है (रोमियों 2:24)। क्या हम इस बात से शोकित होते हैं?

जब आप भारत में यीशु मसीह के नाम को बदनाम होता हुआ देखते हैं, तब क्या आपको चोट लगती है? क्या आपके हृदय में इस बोझ के साथ आप कभी घुटनों के बल परमेश्वर के सामने आए हैं कि हमारे देश में प्रभु का नाम आदर-सम्मान पाए। हमारी आत्मिकता की एक यह भी परख है। प्रेरितों के काम 17:16 में, हम यह पढ़ते हैं कि एथैन्स में मूर्तियों की भरमार को देख पौलुस उसकी आत्मा में जल उठा था। उसे शैतान पर बहुत क्रोध आया था। अगर हम भी पवित्र-आत्मा से भरे होंगे, तो हम भी अपने देश में हो रही मूर्तिपूजा को देखकर शैतान पर क्रोधित होंगे।

जब यीशु ने मन्दिर में लोगों को परमेश्वर के नाम में धंधा करते देखा था तो उसकी आत्मा में भी क्रोध से भर गया था। अगर हम परमेश्वर के साथ एक सही तालमेल में होंगे, तो आज हम भी यह देखकर क्रोधित होंगे कि हमारे देश में लोग मसीह के नाम में धंधा करने द्वारा प्रभु के नाम को बदनाम कर रहे हैं।

सब कुछ परमेश्वर की महिमा के लिएः

2 राजा 17:33 पर विचार करेंः "वे परमेश्वर का भय मानते तो थे... लेकिन अपने-अपने देवताओं की भी आराधना करते थे।" इस पद को अगर हम अपने ऊपर लागू कर के देखें, तो इसका अर्थ यही होगा कि हम रविवार को एक प्रतीकात्मक रूप में परमेश्वर की आराधना करते हैं, लेकिन असल में हर समय अपनी मूर्तियों की पूजा करते हैं।

हम सभी बाइबल पढ़ने, प्रार्थना करने, ट्रैक्ट बाँटने, प्रचार करने, आदि जैसे कामों को पवित्र मानते हुए बड़े हुए हैं। बाक़ी दूसरे काम जैसे खाना, पीना, सोना, बातें करना और बाज़ार से सामान ख़रीदना, आदि बातों को सांसारिक मानते रहे हैं।

इसी विचारधारा का परिणाम यह हो सकता है कि आप यह मान सकते हैं कि आपके धार्मिक काम आपको परमेश्वर की महिमा के लिए करने हैं। लेकिन वह करने के बाद, आप अपने घर और संसार में एक दूसरा जीवन जी सकते हैं - पीठ-पीछे लोगों की बुराई करने, अफवाहें फैलाने, लोगों से तू-तू-मैं-मैं करने, आदि जैसे काम कर सकते हैं। फिर कुछ दिन बाद सभा में जाते समय आप फिर से पवित्र बन जाना चाहते हैं। यह पाखण्ड है। 1 कुरिन्थियों 10:31 में पौलुस कहता है, "चाहे तुम खाओ, या पीयो, या जो कुछ भी करो, सब परमेश्वर की महिमा के लिए करो।" हमारे जीवन का हरेक काम परमेश्वर की महिमा के लिए होना चाहिए।

निकोलस हरमैन (जिन्हें सामान्य तौर पर सब भाई लॉरैन्स कहते थे) बहुत साल पहले एक मसीही-मठ में रसोइया था। वो कहते थे, "मैं चाहे बर्तन साफ करूँ जिसमें मेरे आसपास उनके खड़कने का शोर हो रहा हो, या मैं रसोई में काम कर रहा हूँ, मैं परमेश्वर के सामने अपने जीव को वैसा ही शांत रखते हुए बचाए रखता हूँ जैसा मैं प्रभु-भोज की रोटी और प्याले में शामिल होते समय रखता हूँ।" यह हर समय परमेश्वर की उपस्थिति में, इस अहसास के साथ हर समय जीना है कि हम जो कुछ करते हैं वह पवित्र है।

प्रार्थना में हमारे उद्देश्यों का सही होना

प्रभु की प्रार्थना में, इस निवेदन की सही समझ पा लेने के बाद, हमारी प्रार्थना के उद्देश्य भी प्रभावित होंगे। अक्सर हमारी प्रार्थनाओं के जवाब नहीं मिलते क्योंकि वे प्रार्थनाएं बुरे उद्देश्यों

से की जाती हैं। लेकिन अगर एक व्यक्ति उसके प्रमुख निवेदन के रूप में यह प्रार्थना करता है, "तेरा नाम पवित्र माना जाए", तो उसकी प्रार्थनाओं में कोई ग़लत उद्देश्य शामिल नहीं हो पाएंगे। उसकी यह प्रार्थना होगी, "प्रभु, मेरे हालात चाहे जैसे भी हों, चाहे तू मेरी निवेदन को स्वीकार करे या न करे, फिर भी तेरे नाम की महिमा हो।"

एक बार दाऊद के मन में परमेश्वर का मन्दिर बनाने की बड़ी अभिलाषा पैदा हुई। वह एक भली इच्छा थी। लेकिन 2 शमूएल 7:12-13 में हम पढ़ते हैं कि परमेश्वर ने कहा, "नहीं। तू मन्दिर का निर्माण नहीं करेगा। उसके लिए मैं सुलैमान को इस्तेमाल करूँगा।" और जब दाऊद ने यह सुना तो उसमें कोई कड़वाहट पैदा नहीं हुई। उसने कोई शिकायत नहीं की। उसने परमेश्वर से सिर्फ इतना ही कहा, "तेरा नाम सदा के लिए महान् किया जाए" (2 शमू. 7:26)।

अगर परमेश्वर के नाम की महिमा हो रही थी, तो दाऊद अलग हट जाने के लिए तैयार था। हमारे अनुसरण के लिए यह एक अच्छा उदाहरण है।

क्या हम इस तरह प्रार्थना कर सकते हैं, "पिता हमारे देश में पवित्रता की नवजागृति भेज, और अगर तेरी इच्छा यह है कि उस नवजागृति की शुरूआत किसी दूसरी कलीसिया से हो, तो मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं है। और इस काम में अगर तू मेरी जगह किसी और को इस्तेमाल करना चाहता है, तो वह भी अच्छा है। लेकिन तू अपने नाम की महिमा कर।"

जब हम वास्तव में सच्चाई के साथ यह प्रार्थना करते हैं, "पिता - किसी भी क़ीमत पर - तेरा नाम पवित्र माना जाए," तो हमारे बहुत से स्वार्थी उद्देश्य दूर हो जाते हैं।

पिता के नाम की महिमा करना

यीशु के शब्दों को याद करें, "वह घड़ी आ पहुँची है, जब मनुष्य का पुत्र गेहूँ के दाने की तरह भूमि में गिरेगा, पैरों तले रौंदा जाएगा, और मारा जाएगा। अब क्या मैं यह कहूँ, 'हे पिता, मुझे इस घड़ी से बचा?' नहीं। 'पिता, किसी भी क़ीमत पर - चाहे उसमें मेरा मरना भी क्यों न शामिल हो - तू अपने नाम की महिमा कर'" (यूहन्ना 12:24,27,28, भावानुवाद)।

यीशु ने जो कहा उसने वही किया (उसकी कथनी और करनी में अन्तर नहीं था)। वह अपनी मौत की क़ीमत चुका कर भी अपने पिता के नाम को महिमान्वित करना चाहता था। इसलिए पृथ्वी पर अपना जीवन पूरा करते समय वह अपने पिता से यह कह सका था, "मैंने पृथ्वी पर तेरी महिमा की है" (यूहन्ना 17:4)।

ज़्यादातर विश्वासी उनके पूरे जीवन में भी इस स्तर तक ऊँचे नहीं उठ पाते। वे परमेश्वर-केन्द्रित इस अद्‌भुत जीवन के बारे में कुछ नहीं जानते, और इसलिए वे यह नहीं जानते कि आत्मिक होना असल में क्या होता है। उनकी आत्मा स्वर्ग की आत्मा से पूरी तरह अनजान रहती है।

स्वर्ग में, हरेक की यही प्रार्थना होती है, "प्रभु, तेरे नाम की महिमा हो।" अगर हम अभी इस आत्मा में सहभागी नहीं होंगे, तो हम अनन्त के लिए स्वर्ग में कैसे रह सकेंगे? परमेश्वर यह चाहता है कि हम पृथ्वी पर अभी स्वर्ग की आत्मा में सहभागी हों। उसने हमें इसीलिए पवित्र-आत्मा दिया है। जब हम यह गाते हैं, "स्वर्ग नीचे उतर आया, मैं महिमा से भर गया", तब असल में हम यह कह रहे होते हैं कि मेरी भी अब वही इच्छा है जो स्वर्ग में रहने वालों की है।

अंत में, हम मलाकी 3:16 पर विचार करते हैं, "तब परमेश्वर का भय मानने वालों ने आपस में बातें कीं, और परमेश्वर ने ध्यान देकर सुनीं, और जो परमेश्वर का भय मानते और उसके नाम की महिमा करते थे, उन्हें याद रखे जाने के लिए परमेश्वर के सामने एक पुस्तक लिखी जाती थी।"

परमेश्वर के पास उन लोगों के नाम की सूची है जो उसका भय मानते हैं और जो उसके नाम की महिमा में दिलचस्पी रखते हैं। और उनके बारे में परमेश्वर यह कहता है कि हम उसका निज भाग, उसका ख़ास खज़ाना, उसकी क़ीमती जवाहरात हैं (पद 17)। परमेश्वर के घर में बहुत से मिट्टी के पात्र हैं, लेकिन उसके पास कुछ सोने और चाँदी के पात्र भी हैं (2 तीमु. 2:20, 21)।

मैं सिर्फ इतना कह सकता हूँ कि "परमेश्वर के सामने जिन लोगों के स्मरण के लिए जो पुस्तक लिखी जा रही है - वे लोग जो उसका भय मानते और उसके नाम की महिमा में दिलचस्पी रखते हैं, और जिनकी सबसे बड़ी लालसा यही है कि किसी भी क़ीमत पर प्रभु के नाम की महिमा हो - मैं चाहता हूँ कि मेरा नाम उस पुस्तक में लिखा हुआ पाया जाए।"

तीसरे निवेदन के अंत में आने वाला वाक्यांश - "तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में पूरी होती है, वैसे ही पृथ्वी पर भी हो" - बाक़ी तीनों पहले निवेदनों पर लागू होती है।

इसलिए, हमारी प्रार्थना यह है, "हे पिता, तेरा नाम जैसे स्वर्ग में पवित्र है, वैसे ही पृथ्वी पर भी हो। जैसे स्वर्गदूत तेरा भय मानते और तेरे सामने अपने मुँह ढांपे रहते हैं, और लगातार यह कहते रहते हैं, 'पवित्र, पवित्र, पवित्र,' वैसे ही मैं यह चाहता हूँ कि मेरे सभी साथी-विश्वासी और मैं पूरे हृदय से हमेशा तेरा भय मानें और तेरी महिमा करते रहें। आमीन।"

अध्याय 4

परमेश्वर का राज्य

“तेरा राज्य आए।"

सच्चे उद्धार से हमारे अन्दर स्व-केन्द्रियता से छुटकारा पाने की लालसा पैदा होनी चाहिए जिससे कि परमेश्वर हमारे जीवनों का और प्रार्थना में हमारे निवेदनों का केन्द्र बन सके। हम जो एक समय में उलटे हो गए थे, प्रभु द्वारा सीधे किए गए हैं, कि अब हमारे जीवनों के हरेक क्षेत्र में परमेश्वर को पहला स्थान दे सकते हैं।

सच्ची आत्मिकता के सबसे स्पष्ट चिन्हों में से एक यह है कि एक व्यक्ति अपनी स्व-केन्द्रियता से घृणा करते हुए पूरी तरह से परमेश्वर में केन्द्रित होने की लालसा करने लगता है।

वह मनुष्य जो परमेश्वर में केन्द्रित होना चाहता है, वह परमेश्वर के पास यह कहता हुआ आता है, “हे हमारे स्वर्गीय पिता, मेरे हृदय की सबसे बड़ी लालसा यही है कि पूरी पृथ्वी पर तेरे नाम की महिमा हो और तेरे नाम का भय माना जाए।” तब उसे यह अहसास होगा कि पृथ्वी पर परमेश्वर की नाम की महिमा नहीं हो रही है, और फिर वह उसके दूसरे निवेदन पर पहुँचता है और कहता है, “मैं यह चाहता हूँ कि तू आए और पृथ्वी पर अपना राज्य स्थापित करे कि सारी पृथ्वी तेरा भय माने और तेरे नाम की महिमा करे।”

यह वह प्रार्थना है जो परमेश्वर के लोग पिछले 2,000 सालों से कर रहे हैं। अब वह समय आ गया है जब इस प्रार्थना का जवाब दिया जाएगा।

धार्मिकता का एक राज्यः

इस संसार में फैली बुराई से तंग आ चुका व्यक्ति ही ऐसी प्रार्थना कर सकता है। पतरस कहता है, "हम एक ऐसे नए पृथ्वी और आकाश की राह देख रहे हैं जिसमें धार्मिकता वास करती है" (2 पत. 3:13)।

आज संसार में फैली हिंसा और अनैतिकता को देखें। समाचार-पत्र पढ़ते समय, हमारे हृदय की गहराइयों में से स्वर्ग की ओर जाने वाली यह एक प्रमुख प्रार्थना होनी चाहिएः "पिता, मेरे हृदय की यह लालसा है कि तेरा राज्य आए। मैं अपनी व्यक्तिगत सुविधा के लिए यह नहीं माँग रहा हूँ। मेरी लालसा यही है कि तेरी धार्मिकता का राज जल्दी आए, कि इस पृथ्वी पर तेरा नाम महिमान्वित हो जिसे तूने अपनी महिमा के लिए रचा है।"

यीशु ने कहा कि अंत के दिन नूह के दिनों जैसे होंगे। एक भ्रष्ट व दुष्टता से भरे संसार में नूह एक धर्मीजन था। वह धार्मिकता का प्रचारक था, और वह अवश्य ही उसके आसपास होने वाली बातों से तंग आ गया होगा (2 पत. 2:5)। वह अपने हृदय की गहराई से धार्मिकता की लालसा कर रहा था, और (बुराई से) कोई समझौता किए बिना उसने धार्मिकता का प्रचार किया था। और उसकी प्रार्थना भी ऐसी ही रही होगी, "तेरा राज्य आए।"

सभी विश्वासी यह स्वीकार करते हैं कि मसीह पृथ्वी पर आकर जल्दी ही अपना राज स्थापित करने वाला है। लेकिन हमारा वास्तव में यह विश्वास है, इसका सबूत क्या है? 1 यूहन्ना 3:3 में ऐसा

लिखा है, "प्रत्येक जो उस पर ऐसी आशा रखता है, वह अपने आपको वैसा ही पवित्र करता है जैसा वह पवित्र है।"

अगर मसीह के लौटने पर हमारा वास्तव में विश्वास होगा, तो इसका सबूत यह होगा कि हम अपने आपको ऐसे तैयार करेंगे जैसे एक दुल्हन अपने आपको अपने पति के लिए तैयार करती है। इसका अर्थ एक साफ-सुथरा जीवन जीना, अपने सारे कर्ज़ चुकाना, अपने सारे लड़ाई-झगड़े निपटाना है - और यह अभी करना है, क्योंकि हम अपने आपको वैसे ही पवित्र कर रहे हैं जैसे वह पवित्र है। सिर्फ ऐसा व्यक्ति ही यह प्रार्थना कर सकता है, "तेरा राज्य आए।"

अपने आपको शुद्ध किए बिना, इस प्रार्थना को मसीह के आगमन की तैयारी करने के लिए दोहराना, इस प्रार्थना को एक मामूली धार्मिक विधि बना देना है।

उसके आने के लिए हमेशा तैयार रहना:

मसीही-जगत के कुछ मतों की आराधना-पद्धति में यह प्रार्थना की जाती है, "प्रभु, मुझे अचानक होने वाली मौत से बचाए रखना।" वह प्रार्थना ज़रूर किसी मन-न-फिराए हुए व्यक्ति ने दूसरे मन-न-फिराए हुए व्यक्तियों के लिए ही लिखी होगी। जो लोग स्व-केन्द्रित होते हैं, उन्हें मरने से पहले कुछ समय की इसलिए ज़रूरत होती है क्योंकि अपने सृष्टिकर्ता के सामने खड़े होने से पहले, उन्हें अपने झगड़े निपटाने होते हैं, और अपने कर्ज़ आदि चुकाने होते हैं। वे जब तक एक स्वस्थ दशा में रहते हैं, तब तक इन मामलों को निपटाने का उनका कोई इरादा नहीं होता। ऐसे लोगों में परमेश्वर का कोई भय नहीं होता, और जब तक वे अपनी स्व-केन्द्रियता से मन नहीं फिराते, तब तक उनके हृदय कभी नहीं बदल सकते।

एक सच्चे मसीही को कभी ऐसी प्रार्थना करने की ज़रूरत नहीं होती क्योंकि वह हमेशा तैयार रहता है। उसका लेखा-जोखा हमेशा सही रहता है। और इसलिए वह हमेशा यह प्रार्थना कर सकता है, "तेरा राज्य आए।"

हम यह कैसे जान सकेंगे कि हम परमेश्वर के राज्य के आने के लिए उत्सुक हैं? यह जानने के लिए हम सिर्फ एक क्षेत्र के बारे में विचार करें -हमारा पारिवारिक क्षेत्र।

मान लें कि एक दिन अपने घर की खिड़की से बाहर देखते समय, आप स्वयं प्रभु यीशु को अपने घर की तरफ आता हुआ देखते हैं। तब आपकी क्या प्रतिक्रिया होगी? इसमें से काफी अच्छी तरह यह परख हो जाएगी कि आप परमेश्वर के राज्य के आगमन के लिए तैयार हैं या नहीं।

क्या आपको दौड़कर अपनी कुछ ऐसी पुस्तकें छुपाने की ज़रूरत पड़ेगी जिन्हें आप यीशु को दिखाना नहीं चाहते? और अगर आपके पास एक टी.वी. है जो आपको शायद उसे भी कहीं छुपाना पड़ेगा।

जब तक यीशु आपके साथ रहेगा, तब तक आपकी खाने की मेज़ की बातचीत में होने वाली नियमित गप-शप नहीं हो सकेगी।

और क्या उन दिनों आपको अपने परिवार के लोगों और सेवकों के प्रति अपनी बोली की सामान्य कठोरता को त्याग कर, ख़ास तौर पर दयालु और सभ्य नज़र आने पर ख़ास ध्यान देने की ज़रूरत पड़ेगी?

अगर प्रभु आपके सभी दोस्तों से मिलता है, तो क्या आपको ख़ुशी होगी या आप यह चाहेंगे कि जब तक यीशु आपके घर में है, तब तक आपके कुछ दोस्त आपके घर न आएं? क्या आप यह चाहेंगे कि यीशु इसी तरह आपके साथ हमेशा हमेशा के लिए रहे? या आप उस समय राहत की एक बड़ी साँस लेंगे जब आपके घर की

भेंट करने का यीशु का समय पूरा हो जाएगा और वह आपके घर से चला जाएगा?

अपने प्रति ईमानदार रहें:

इस सवाल का जवाब पाने का एक तरीक़ा अपने आपसे यह सवाल करना है कि जब हमारे घर में मेहमान आते हैं, तब उन्हें प्रभावित करने के लिए हमारे व्यवहार में बदलाव आ जाता है या नहीं। अगर ऐसा है, तो यीशु के हमारे घर में सिर्फ कुछ दिन के लिए ही मेहमान बन कर आ जाने से हमारा व्यवहार कितना बदल जाएगा!

अगर हम यह नहीं चाहते कि यीशु आकर हमारे घर में रहे, और हमारे घर का प्रभु हो, तो यह प्रार्थना करना बिलकुल व्यर्थ है: "तेरा राज्य आए।" आख़िरकार, परमेश्वर का राज्य वही जगह है जहाँ यीशु कुछ दिनों के लिए नहीं, बल्कि हर समय प्रभु के रूप में मौजूद रहेगा। अगर उसके कुछ दिनों तक ही हमारे घरों में रहने से हम तनाव में आ जाते हैं, तो अनन्त में उसके साथ कैसे रह सकेंगे?

स्वर्ग में खज़ाने:

वह मनुष्य जो यह प्रार्थना करता है, "तेरा राज्य आए", वह है जिसने अपने मन के विचार, अपने लगाव, और अपनी लालसाएं उन बातों में लगा दी हैं जो ऊपर की हैं। वह ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसने मसीही धर्म और पवित्रता का ओढ़ना ओढ़ रखा है। उसकी आत्मिकता सतही नहीं है। वह उसके अस्तित्व की गहराई में उसके हरेक कोने में पहुँची हुई है। वह अपना खज़ाना पृथ्वी की बजाय स्वर्ग में जमा करने में ज़्यादा दिलचस्पी रखता है।

धन के प्रति एक मसीही का मनोभाव, उसके आत्मिक स्तर, और परमेश्वर के राज्य के आगमन के लिए उसकी वास्तविक लालसा की एक स्पष्ट परख होती है।

मुझे एक किसान की कहानी याद आती है जिसने एक दिन अपनी पत्नी से कहा, "हमारी गाय ने अभी कुछ समय पहले ही दो बछड़ों को जन्म दिया है जिनमें एक सफेद है और एक भूरा है। मैं सोच रहा हूँ कि जब वे बड़े हो जाएं तो हम उनमें से एक प्रभु को अर्पित कर देंगे।" उसकी पत्नी ने पूछा, "तुम उनमें से कौन सा बछड़ा प्रभु को दोगे, सफेद या भूरा?" किसान ने जवाब दिया, "इसका फैसला हम उनके बड़े होने के बाद कर लेंगे।"

दोनों बछड़े बड़े होने लगे और ख़ूब मोटे-ताज़े हो गए। एक दिन किसान बड़े उदास चेहरे के साथ घर लौटा और बोला, "तुम्हारे लिए एक बुरी ख़बर है। प्रभु का बछड़ा अभी कुछ ही देर पहले मर गया है।" उसकी पत्नी ने पूछा, "लेकिन तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि प्रभु का बछड़ा कौन सा है, तुमने तो अभी तक यह तय ही नहीं किया था।" उसने कहा, "अरे मेरे मन में बहुत दिनों से यह बात आ रही थी कि मैं भूरे बछड़े को प्रभु को दे दूँ; लेकिन वह आज सुह ही मर गया।"

ज़्यादातर विश्वासियों के साथ यही होता है। हमेशा प्रभु का बछड़ा ही मरता है!

उनकी सारी ज़रूरतें पूरी हो जाने के बाद जो कुछ बचता है, वे परमेश्वर को वही अर्पित करते हैं।

और क्योंकि वे "परमेश्वर के प्रति धनवान" नहीं होते, इसलिए उनके जीवन-भर वे आत्मिक रूप से निर्धन रहते हैं। (लूका 12:21)।

पुरानी वाचा में परमेश्वर ने यह नियम बनाया था कि सभी इस्राएलियों को उनका सर्वोत्तम "पहला फल" परमेश्वर को अर्पित

करना था (निर्ग. 23:19)। वे सिर्फ इस तरह ही "परमेश्वर का आदर" कर सकते थे (नीति. 3:9)। आज भी ऐसा ही है। अगर हम परमेश्वर को अपना सर्वश्रेष्ठ नहीं देते, तो हम उसका आदर नहीं कर सकते।

हम अपने जीवनों में क्या पाते हैं? परमेश्वर को अपना सर्वश्रेष्ठ न देने के लिए क्या हमारे पास हमेशा कोई-न-कोई बहाना तैयार रहता है? अगर हाँ, तो यह हमारे हृदयों की असली दशा दिखाता है। जहाँ एक मनुष्य का धन होता है, वहीं उसका मन भी लगा होता है।

लेकिन वह मनुष्य जो यह प्रार्थना करता है, "तेरा राज्य आए," ऐसा व्यक्ति है जो धन और भौतिक वस्तुओ के प्रेम से छुड़ाया जा चुका है। अब वह परमेश्वर और अनन्त के लिए जीता है।

परमेश्वर का सर्वोच्च राजः

परमेश्वर के राज्य का मतलब परमेश्वर की सरकार है - परमेश्वर का सर्वोच्च राज। इसका अर्थ यीशु मसीह को अपने जीवन के हरेक क्षेत्र का पूरी तरह से प्रभु बना लेना है।

अगर हम चाहते हैं कि परमेश्वर का राज्य आए, तो उसे सबसे पहले हमारे हृदय में, हमारे घरों में और हमारी कलीसियाओं में आना चाहिए। इन जगहों में हमें शरीर के कामों और शैतान को कोई मौक़ा नहीं देना चाहिए। हमारी लालसा यह हो कि परमेश्वर का राज्य हमारे हृदयों, हमारे घरों, और हमारी कलीसियाओं को इस तरह से भर दे कि फिर बाक़ी और किसी बात के लिए कोई जगह ही न बचे।

पवित्र-आत्मा "परमेश्वर के राज्य को सामर्थ्य के साथ" पृथ्वी पर ले आया है (मरकुस 9:1)। आज हमारी स्थानीय कलीसियाओं को संसार के सामने यह दर्शाने वाला होना चाहिए कि परमेश्वर का

राज्य कैसा है - वही जो एक दिन पृथ्वी के पूरे विस्तार तक फैला होगा। हमने प्रभु को यहीं निराश किया है।

जब यीशु ने हमें पहले स्वर्ग के राज्य की खोज करने और पृथ्वी की बातों की चिंता न करने के लिए कहा, तो असल में वह कह रहा था कि अगर कोई ऐसी बात है कि जिसकी हमें वास्तव में चिंता करने की ज़रूरत है, तो वह यह कि परमेश्वर का राज्य जैसे स्वर्ग में है, वैसे ही पृथ्वी पर भी आ जाए (मत्ती 6:33)। हममें से ऐसे कितने हैं जो कलीसिया की शुद्धता और परमेश्वर के राज्य के आने के लिए इस तरह की चिंता का बोझ महसूस करते हैं?

ऐसा हो कि परमेश्वर हमारे बीच में से ऐसे बहुत से लोग पाए जो पहले उसके राज्य की खोज करते हैं।

अध्याय 5

परमेश्वर की इच्छा

“तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में पूरी होती है, वैसे पृथ्वी पर भी हो।”

हमारे जीवन में हम यीशु मसीह को तभी प्रभु कह कर पुकार सकते हैं, जब हमारे प्रतिदिन के जीवन में हम उसकी आज्ञाओं का पालन करने के लिए तैयार होते हैं। सच्चा मन-फिराव तब तक नहीं होता जब तक एक व्यक्ति उसके सोच-विचारों में या भावनाओं में प्रेरित होता है, बल्कि तब जब वह अपनी इच्छा को यह कहते हुए प्रभु के आगे अर्पित करता है, “प्रभु, मेरे जीवन में मेरी नहीं तेरी इच्छा पूरी हो।” अगर हम लगातार प्रभु के सामने अपना ऐसा मनोभाव बनाए रखेंगे, तब हम लगातार पवित्र होते जाएंगे।

पवित्रता का भेदः

पृथ्वी पर अपने पूरे जीवन-भर यीशु ने स्वयं अपने पिता से यह कहते हुए प्रार्थना की, फ्मेरी नहीं तेरी इच्छा पूरी हो” (यूहन्ना 6:38)।

पिता को प्रसन्न करने के लिए अगर स्वयं यीशु के लिए इस तरह जीना ज़रूरी था, तो हम यक़ीन के साथ कह सकते हैं कि हमारे लिए भी इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं हो सकता। अगर हमारे जीवनों में लगातार यही मनोभाव बना नहीं रहेगा, तो प्रभु के संग-संग चलने में हम कोई प्रगति नहीं कर सकेंगे।

हम प्रार्थना करने और पवित्र-शास्त्र का अध्ययन करने में घण्टों ख़र्च कर सकते हैं और सैंकड़ों सभाओं में सहभागिता कर सकते हैं। लेकिन अगर वह सब कुछ मिलकर हमें इस बिन्दु तक नहीं

पहुँचाता जहाँ हम यह बोलने वाले बन सकें, फ्तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में पूरी होती है, वैसे ही पृथ्वी पर (और सबसे पहले हमारे जीवन में) पूरी हो," तो हमने अपना समय बर्बाद ही किया है। यह ज़रूरी है कि कृपा का हरेक ज़रिया हमें उस बिन्दु पर पहुँचाए जहाँ हम अपने पूरे हृदय से यह कह सकें, फ्हे पिता, मेरी नहीं, तेरी इच्छा पूरी हो।"

सच्ची पवित्रता का भेद इसी बात में रखा है।

पौलुस ने जब गलातियों को शरीर और आत्मा के संघर्ष के बारे में लिखा, तब वह मनुष्य की इच्छा और परमेश्वर की इच्छा के इसी संघर्ष कें बारे में बात कर रहा था।

एक ही शब्द में शरीर और उसकी सारी वासनाओं का वर्णन किया जा सकता है - स्वेच्छा। नई वाचा में आप जहाँ भी यह वाक्यांश - "शरीर की अभिलाषाएं" - पढ़ें, तो आप उसकी जगह यह वाक्यांश रख सकते हैं - स्वेच्छा और स्वकेन्द्रित लालसाएं। तब आपको उन पदों का अर्थ समझ आ जाएगा।

जैसे, हमें बताया गया है कि पवित्र-आत्मा शरीर के विरोध में लालसा करता है (गला. 5:17)। इसका अर्थ यही है कि पवित्र-आत्मा हमेशा हमारी स्वेच्छा और हमारी स्व-केन्द्रित लालसाओं से लड़ता रहता है।

पवित्र-आत्मा जानता है कि उसे पहले हमारी स्वेच्छा और स्वकेन्द्रित लालसाओं को ख़त्म करना पड़ेगा, और उसके बाद ही वह हमें स्वर्ग के लायक़, पवित्र और मसीह-समान बना सकता है।

पवित्र और शुद्ध होने का रास्ता अपनी ख़ुदी को मौत के हवाले करने का - अपने आपको को 'नहीं' और परमेश्वर को 'हाँ' कहने का रास्ता है। इसका अर्थ यह कहना है, "मेरे जीवन के लिए तेरी इच्छा की परिधि से बाहर मेरी अपनी कोई लालसाएं, योजनाएं या

महत्वकांक्षाएं नहीं हैं। तेरी सिद्ध इच्छा से बाहर जाकर मुझे कुछ नहीं चाहिए।"

प्रतिदिन के जीवन में सूलीः

यीशु ने कहा, "अगर कोई मेरे पीछे आना चाहता हो, तो वह स्वयं अपना इनकार करे, प्रतिदिन अपनी सूली उठाए, और मेरे पीछे चले" (लूका 9:23)। जिस बिन्दु पर परमेश्वर की इच्छा हमारी इच्छा के आड़े आती है, हम वहीं अपनी प्रतिदिन की सूली पाते हैं। सूली उठाने का मतलब यह कहना है, "पिता, मेरी नहीं लेकिन तेरी इच्छा पूरी हो।"

सिर्फ वही व्यक्ति जिसने अपनी स्वयं की इच्छा, अपनी स्वयं की योजनाओं, अपनी स्वयं की अभिलाषाओं, और अपनी स्वयं की महत्वकांक्षाओं, आदि को "नहीं" कह दिया है, और जिसने यह कह दिया है, "प्रभु मैं अपनी सूली उठाना चाहता हूँ, अपनी अभिलाषाओं के लिए मरना चाहता हूँ, तेरे पीछे चलना चाहता हूँ, और सिर्फ तेरी इच्छा पूरी करना चाहता हूँ" वास्तव में यह प्रार्थना कर सकता है, "तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में पूरी होती है, वैसे पृथ्वी में भी हो।"

यीशु ने कहा, "हे थके और बोझ से दबे लोगों, मेरे पास आओ, और मैं तुम्हें विश्राम दूँगा" (मत्ती 11:28)। लेकिन वह वहीं नहीं रुका। उसने आगे बढ़ते हुए हमें बताया कि वह विश्राम वह हमें कैसे देगा।

उसने कहा, "मेरा जुआ अपने ऊपर उठा लो और मुझ से सीखो, क्योंकि मैं मन में नम्र व दीन हूँ, और तुम अपने मनों में विश्राम पाओगे" (मत्ती 11:29)। दूसरे शब्दों में, तुम्हें वह विश्राम तब तक नहीं मिल सकेगा जब तक तुम सूली नहीं उठाओगे, और अपनी स्वेच्छा को "नहीं" न बोलोगे। सारी बेचैनी हमारी अपनी इच्छा पूरी

करने में से आती है। अगर आप सूली नहीं उठाना चाहते, तो आप प्रभु के पास भी नहीं आ सकते।

सिर्फ एक सच्चा विश्वासी ही यह प्रार्थना कर सकता है, "तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में पूरी होती है, वैसे ही पृथ्वी पर भी हो।" स्वयं यीशु ने उसके पूरे जीवन-भर पृथ्वी पर यह प्रार्थना की थी। उसने वही सिखाया था जो उसने स्वयं किया था। वह मनुष्य की तरह रहा था, और उसकी सबसे बड़ी अभिलाषा पिता की इच्छा को पूरा करना था।

यीशु पृथ्वी पर क्यों आया था? इसका जवाब हैः पिता की इच्छा को पूरा करने के लिए। उसने यूहन्ना 6:38 में स्वयं यह कहा हैः "क्योंकि मैं अपनी इच्छा नहीं वरन् अपने भेजने वाले की इच्छा पूरी करने के लिए स्वर्ग से उतरा हूँ।" मुख्य रूप में संसार के पापों के लिए मरने नहीं आया था। नहीं। वह अपने पिता की इच्छा पूरी करने के लिए आया था। वह कलवरी पर जाकर सिर्फ इसलिए मरा क्योंकि वह उसके जीवन के लिए पिता की योजना का हिस्सा था।

यीशु ने यूहन्ना 4:34 में कहा, "मेरा भोजन यह है कि मैं अपने भेजने वाले की इच्छा और उसका काम पूरा करूँ।" जैसे एक भूखा व्यक्ति खाने के लिए पुकार उठता है, वैसे ही यीशु का पूरा अस्तित्व पिता की इच्छा पूरी करने के लिए पुकारता रहता था। यीशु के पीछे चलने का अर्थ हमारे जीवन के हरेक क्षेत्र में पिता की इच्छा को पूरा करने की ऐसी ही लालसा करना है।

स्वर्ग में इतनी ख़ुशी के होने और कोई दुःख न होने की वजह यही है कि वहाँ पूरी तरह से परमेश्वर की इच्छा पूरी की जाती है। परमेश्वर की इच्छा एक ऐसी बात है जो लोगों को सबसे ज़्यादा ख़ुशी और आनन्द की भरपूरी देती है।

पतरस ने लिखा, "इसलिए, जबकि मसीह ने शरीर में दुःख उठाया, तो तुम भी इसी अभिप्राय से हथियार धारण करो, क्योंकि जिसने शरीर में दुःख उठाया है, वह पाप से छूट गया है। इसलिए अपना शेष जीवन शरीर में मनुष्यों की अभिलाषाओं में नहीं बल्कि परमेश्वर की इच्छा में व्यतीत करो" (1 पत. 4:1,2)।

प्रेरित यूहन्ना ने लिखा, "संसार और उसकी लालसाएं भी मिटती जा रही हैं, लेकिन वह जो परमेश्वर की इच्छा पूरी करता है, सर्वदा बना रहेगा" (1 यूहन्ना 2:17)।

विश्वासियों के लिए प्रेरितों को प्रार्थना का बोझ यही था कि "तुम परेश्वर की समस्त इच्छा में परिपक्व और आश्वस्त होकर स्थिर रहो" (कुलु. 4:12)। प्रेरित यह जानते थे ऐसा उद्धार जो सिर्फ पापों की क्षमा देता था लेकिन एक व्यक्ति को उस दिशा में नहीं ले जाता था जिसमें वह अपना बाक़ी जीवन परमेश्वर की इच्छा पूरी करने के लिए अर्पित न करता हो, एक झूठा उद्धार है। पापों की क्षमा तो सिर्फ वह द्वार है जिसमें से होकर हम परमेश्वर की सारी इच्छा को पूरा करने के लिए संकरे मार्ग में चलते हैं।

स्वर्ग में परमेश्वर की इच्छा कैसे पूरी होती हैः

हमें यह प्रार्थना करनी है, "तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में पूरी होती है, वैसे ही पृथ्वी पर भी हो।" परमेश्वर की इच्छा स्वर्ग में कैसे पूरी होती है? इसमें मैं चार बातों का उल्लेख करना चाहता हूँ।

सबसे पहले यह, कि स्वर्गदूत परमेश्वर से आज्ञा पाने के लिए निरंतर एक प्रतीक्षा की दशा में रहते हैं। वे स्वयं अपने विचारों से प्रेरित होकर स्वर्ग में इधर-उधर दौड़ते हुए "परमेश्वर के लिए कुछ करने" की कोशिश नहीं करते। नहीं। वे पहले परमेश्वर के बोलने की प्रतीक्षा करते हैं, और उसके बाद ही वे कुछ करते हैं।

परमेश्वर कहता है,

“मैं ऐसे इंसान को ढूंढता हूँ, जो जागे व सब्र से इंतज़ार करे,
मेरे हाथ के इशारे, और मेरी आँख के इरादे को जाने,
जो मेरे सौंपे हुए काम को मेरे तरीक़े से करे,
और जो मेरा काम नहीं है, उसमें से गुज़रता रहे।
ओह, जब ऐसा इंसान मुझे मिल जाता है,
तब मेरा आनन्द मेरे पास लौट आता है,
वह जो मेरी सारी मर्ज़ी पूरी करता है,
अपने मालिक के मन को परखता रहता है।”

इसलिए जब हम यह प्रार्थना करते हैं “तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में पूरी होती है, वैसे पृथ्वी पर भी हो,” तो इसका अर्थ यह है कि जो परमेश्वर को हमसे कहना है, हम पहले वह सुनना चाहते हैं।

दूसरी बात, कि जब परमेश्वर बोलता है, तो स्वर्गदूत तुरन्त आज्ञा पालन करते हैं। वे यह नहीं कहते, “प्रभु, मैं कुछ दिन इंतज़ार करके इस पर विचार करूँगा।” स्वर्ग में ऐसी कोई बात नहीं होती। जब परमेश्वर बोलता है, तो वह निर्णायक बात होती है। उसका फौरन आज्ञा पालन होता है।

तब हमारी यह प्रार्थना होनी चाहिए, “पिता, मेरी मदद कर कि तेरी आवाज़ सुनने के बाद देर न करूँ। मैं तेरे ठहराए हुए समय से आगे नहीं भागना चाहता, लेकिन जब तू एक बार बोल दे, तो मैं दोबारा न सोचूँ बल्कि तुरन्त आज्ञा पालन करूँ।”

तीसरी बात, जब परमेश्वर स्वर्ग में किसी बात की आज्ञा देता है, तब वह पूरी तरह पूरी की जाती है। स्वर्गदूत परमेश्वर की इच्छा को अधूरा नहीं छोड़ते। इसलिए, हमारी प्रार्थना ऐसी होनी चाहिए, “पिता, मेरी मदद कर कि मेरे जीवन में मैं तेरी सारी इच्छा पूरी

कर सकूँ - चाहे इसकी कुछ भी क़ीमत क्यों न चुकानी पड़े, तेरी हरेक आज्ञा को पूरी तरह पूरा कर सकूँ।"

अंतिम बात यह कि स्वर्गदूतों का आज्ञापालन में आनन्द की भरपूरी होती है। नहीं, वे आज्ञापालन करते हुए कुड़कुड़ाते और शिकायत नहीं करते। कोई स्वर्गदूत उसके काम की तुलना दूसरे से करते हुए यह नहीं कहता, "प्रभु, तूने मुझे उस दूसरे स्वर्गदूत से ज़्यादा मुश्किल काम क्यों दिया है" आदि।

हम ऐसी शिकायतें विश्वासियों के बीच भी पाते हैं। "हर बार मैं ही सब बातों में बलिदान क्यों करूँ? वह ऐसा क्यों नहीं करता/करती?" आदि। लेकिन स्वर्ग में हम स्वर्गदूतों के बीच ऐसे शब्द कभी नहीं सुन सकते। परमेश्वर के लिए कुछ भी करने को वे अपना विशेषाधिकार समझते हैं, और उसकी आज्ञापालन करने के हरेक मौक़े में वे आनन्दित होते हैं।

इसलिए, जब हम यह प्रार्थना करते हैं, तो हमारे जीवनों में हम इस तरह परमेश्वर की इच्छा के पूरा होने के लिए प्रार्थना करते हैं - आनन्द के साथ, बिना कोई शिकायत किए, और बिना किसी से कोई तुलना किए।

अन्त में कोई अफसोस नहीं रहेगाः

अगर आप पृथ्वी पर इस तरह परमेश्वर की इच्छा पूरी करेंगे, तब स्वर्ग में आपके अन्दर कोई अफसोस नहीं रहेगा।

हम जब-जब अपने प्रभु का मुख देखेंगे, तब-तब हममें यही विचार उठेगा कि कितना अच्छा होता अगर हमने अपना जीवन उसे और ज़्यादा दिया होता, व उसकी आज्ञाओं का और ज़्यादा पालन किया होता। अगर आप पृथ्वी पर परमेश्वर की सारी आज्ञाओं का तुरन्त, पूरी तरह, और आनन्द के साथ पालन नहीं करेंगे, तो आप उसी अनुपात में अपने लिए स्वर्ग की मधुरता खो देंगे।

साधु सुन्दर सिंह अक्सर यह कहते थे, “इस पृथ्वी से चले जाने के बाद, आपको मसीह की सूली उठाने का दूसरा मौक़ा नहीं मिलेगा।” अगर आप प्रभु के लिए अपने प्रेम को साबित करना चाहते हैं, तो उसका समय अभी और यहीं है - स्वर्ग में जाने के बाद नहीं।

प्रार्थना के जिन तीन निवेदनों पर हमने विचार किया है, उनके बारे में सोचें। “पिता, तेरा नाम पवित्र माना जाए, तेरा राज्य आए, और तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में पूरी होती है, वैसे ही पृथ्वी पर भी हो।” पापों की क्षमा माँगने से पहले, जो कि बहुत ही ज़रूरी है, प्रभु ने हमारे जीवनों में हमें पिता के नाम की पवित्रता, उसके राज्य के आने, और उसकी इच्छा के पूरे होने की बात सिखाई थी। प्रभु हमें जो सिखाना चाह रहा है, ऐसा हो कि हम वह सीख सकें।

अध्याय 6

हमारी शारीरिक ज़रूरतें

“हमारे प्रतिदिन की रोटी हमें दे।”

परमेश्वर हमारी शारीरिक ज़रूरतों को पूरा करने में दिलचस्पी रखता है। लेकिन ये ज़रूरतें इस तरह पूरी होनी चाहिए कि हमें कोई नुक़सान न हो। अगर लोग यह नहीं जानते कि उनके जीवनों में उन्हें परमेश्वर को पहला स्थान कैसे देना है, तो भौतिक समृद्धि और शरीर की स्वस्थता की आशिषें आत्मिक रूप में लोगों के जीवन बर्बाद करने का रास्ता बन जाती हैं।

दस हज़ार रुपए एक परिपक्व, आत्मिक मनुष्य द्वारा बहुत अच्छी तरह इस्तेमाल हो सकते हैं, लेकिन एक भटकने वाले मन-मिज़ाज के ग़ैर-ज़िम्मेदार लड़के के हाथ में आ जाने पर वे उसे बर्बाद कर सकते हैं।

इसलिए, हमें भौतिक और शारीरिक आशिषें देने से पहले, परमेश्वर यह चाहता है कि हम उसमें केन्द्रित हों।

पहले हमारी शारीरिक ज़रूरतेंः

इस प्रार्थना में हमारी व्यक्तिगत ज़रूरतों से जुड़ी तीन बातें हैं। पहली, और एक अद्भुत रीति से, हमारी आत्मिक भलाई के बारे में नहीं है! क्या यह एक दिलचस्प बात नहीं है! हमारे बारे में सबसे पहली बात यह नहीं है, “हमें आत्मिक बुराई से बचा,” या “हमें पाप पर जय प्रदान कर,” या फिर यह कि फ्हमें पवित्र-आत्मा से भर दे।” नहीं। हमारे लिए पहला निवेदन यह है, “प्रभु, मेरी शारीरिक ज़रूरत को पूरा कर।” बाइबल कहती है कि मनुष्य एक

त्रिगुणी सृष्टि है। उसकी एक आत्मा है जो उसे परमेश्वर के साथ संपर्क करने योग्य बनाती है, एक जीव है जो उसका व्यक्तित्व है (उसकी सोच-समझ, भावनाएं, और इच्छा) और एक देह है (1 थिस्स. 5:23)।

प्रभु की प्रार्थना के अगले तीन निवेदन हमारे अस्तित्व के इन तीनों भागों से जुड़े हुए हैं। पहला हमारी देह/शरीर की ज़रूरतों के बारे में है; दूसरा पाप के दोष के बारे में है जो हमारे मन (जीव) को दूषित कर सकता है; और तीसरा हमारी आत्मा को आत्मिक दुष्टता से छुड़ाने के बारे में है। हमारी आत्मा हमारे अस्तित्व का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है। फिर भी प्रभु ने पहले हमारी शारीरिक देह की ज़रूरतें पूरी होने के लिए प्रार्थना करने को कहा।

शारीरिक देह के बारे में मसीही जगत में दो अतिवादी नज़रिए पाए जाते हैं। कुछ लोगों का वैराग्यवादी नज़रिया है जो यह सिखाता है कि जब तक देह को सारे चैन-आराम से वंचित रखते हुए दबा कर नहीं रखा जाएगा, तब तक हम पवित्र नहीं हो सकते। लेकिन देह पाप का कारण नहीं हो सकती, क्योंकि शैतान, जिसकी कोई देह नहीं है, पाप से भरा हुआ है, जबकि यीशु, जिसकी देह थी, उसने कभी कोई पाप नहीं किया था।

वैराग्यवादी शिक्षा विवाह के सम्बंध को भी पापमय मानती है। लेकिन याद रखें कि परमेश्वर ने ही मनुष्य को लैंगिक अभिलाषा के साथ रचा था और उसने उसे "बहुत अच्छा" कहा था (उत्पत्ति 1:31)। खाने की, आराम करने की, और लैंगिक सम्भोग करने की अभिलाषाएं सभी भली और सामान्य दैहिक अभिलाषाएं हैं और परमेश्वर द्वारा रची गई हैं। हमें इनमें से किसी से भी लज्जित होने की ज़रूरत नहीं है। हमें बस यह ध्यान रखने की ज़रूरत है

कि हम इनमें से कोई भी किसी ऐसे तरीक़े से पूरा न करें जिसे परमेश्वर ने वर्जित किया है।

मसीहियों में दूसरा अतिवादी नज़रिया यह है कि परमेश्वर चाहता है कि हम धनवान हों। इसके नतीजे के रूप में हम देह को बहुत लाड़-प्यार करने वाले बन जाते हैं।

लेकिन यीशु की शिक्षा में न तो वैराग्यवाद की अति थी, और न ही भौतिक भोग-विलासिता की अति थी। उसमें देह की सही/वैध ज़रूरतों को इस तरह पूरा करना था कि वह परमेश्वर की सेवा के लिए तैयार हो सके।

हमारी देह के लिए परमेश्वर की देखभालः

बहुत से विश्वासियों में क्योंकि यह ग़लत विचार समाया हुआ है कि परमेश्वर को हमारी शारीरिक देह में कोई दिलचस्पी नहीं है, इसलिए बीमार होने पर वे परमेश्वर से चंगाई के लिए प्रार्थना नहीं करते। आसा की तरह, उनका विश्वास परमेश्वर में नहीं बल्कि वैद्यों (डाक्टरों) में होता है (2 इति. 16:12)।

परमेश्वर हमें चंगा करने के लिए डॉक्टर, दवा और सर्जरी (शल्य-क्रिया) को भी इस्तेमाल कर सकता है। हम उससे यह नहीं कह सकते कि वह हमारी इच्छानुसार प्रार्थनाओं का जवाब दे। लेकिन यह एक यक़ीनी बात है कि वह नहीं चाहता कि उसके बच्चे किसी मनुष्य में अपना भरोसा रखें। परमेश्वर को हमारी देह में बहुत दिलचस्पी है - कि वह उसकी महिमा के लिए इस्तेमाल होने के लिए स्वस्थ और पुष्ट रहे।

हमारी शारीरिक देह के बारे में बाइबल महिमा से भरे ये तीन सत्य प्रकट करती हैः

(I) "देह प्रभु के लिए है, और प्रभु देह के लिए है";

(II) हमारी "देह मसीह का अंग है";

(III) हमारी "देह पवित्र-आत्मा का मन्दिर है" (1 कुरि. 6:13-19)। इसलिए हम अवश्य ही अपनी देह के लिए परमेश्वर की सामर्थ्य को पुकार सकते हैं।

यक़ीनन, शारीरिक आत्मिक से ज़्यादा महत्वपूर्ण नहीं है। हमने पहले ही यह देख लिया है कि हमारे जीवनों में परमेश्वर का पहला स्थान होना चाहिए और बाक़ी सब कुछ उसके बाद आना चाहिए। लेकिन अगर हमने पहले वास्तव में यह प्रार्थना की है, कि "तेरा नाम पवित्र माना जाए, तेरा राज्य आए, तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में पूरी होती है वैसे ही पृथ्वी पर भी हो", तब उसके बाद, हमारे लिए यह कहना सही है कि "हमारे प्रतिदिन की रोटी हमें दे," क्योंकि हम रोटी इसलिए माँग रहे हैं कि हम परमेश्वर की पृथ्वी पर वैसी ही महिमा कर सकें जैसे उसकी स्वर्ग में हैं।

हमारी आत्मिक दशा एक हद तक हमारी शारीरिक दशा पर भी निर्भर रहती है। हम एलिय्याह के बारे में यह पढ़ते हैं कि स्वर्ग से आग और वर्षा बुलाने के बाद, वह निराश हो गया था और उसने परमेश्वर से उसकी जान ले लेने के लिए कह दिया था। यह साहसी व्यक्ति, जिसने 450 झूठे नबियों का सामना किया था, एक स्त्री, ईज़ेबेल की धमकी से डर कर भाग गया था (1 राजा 18:19)।

यह कैसे हुआ था? तीन साल तक एलिय्याह अकेला रहा था। और उसने कर्मेल पर्वत पर कड़ी मेहनत का एक पूरा दिन बिताने के बाद वह थक कर चूर हो चुका था। और जब वह एक झाऊ के पेड़ के नीचे निराश बैठा था, तो परमेश्वर ने उसके सामने एक संदेश का प्रचार नहीं किया था! नहीं। परमेश्वर ने उसके पास रोटी और पानी देकर एक स्वर्गदूत को भेजा था। एलिय्याह ने खाया और

पिया और फिर सो गया। उसके उठने पर परमेश्वर ने उसे और खाना और पानी दिया (1 राजा 19:1-8)।

परमेश्वर को मालूम था कि एलिय्याह बहुत थक गया था और उसे किसी प्रबोधन की नहीं बल्कि भोजन की ज़रूरत थी। ऐसे समय होते हैं जब हमें भी लम्बे प्रचार की नहीं बल्कि थोड़े से अच्छे खाने, और कुछ विश्राम की ज़रूरत होती है।

अपनी देह के प्रति कुछ मसीहियों का मनोभाव अति-आत्मिक होता है और वे कहते हैं, "मैं परमेश्वर के लिए जल कर भस्म हो जाना चाहता हूँ।" फिर वे जाकर परमेश्वर के लिए सुबह, दोपहर, शाम, सप्ताह के सातों दिन - प्रत्येक सप्ताह, अपनी "सेवकाई" करते रहते हैं। और फिर उनमें थकान और निराशा भर जाती है! उनकी सारी गतिविधि जैविक थी। उनकी निराशा की वजह आत्मिक नहीं बल्कि शारीरिक होती है। ऐसे लोगों से प्रभु को यह कह देना पड़ता है, "जाओ और एकान्त में जाकर कुछ देर विश्राम कर लो" (मरकुस 6:31)।

एक बार जब यीशु नाव में कहीं जा रहा था, तो हम पढ़ते हैं कि वह सो रहा था। यह स्पष्ट है कि वह थका हुआ था, और उसके लिए यह कोई शर्म की बात नहीं थी कि वह सोता हुआ पाया जाए। ऐसे समय होते थे जब वह भूखा या प्यासा होता था, और वह सहज ही यह स्वीकार कर लेता था। वह अपनी शारीरिक ज़रूरतों की वजह से शर्मिन्दा नहीं होता था। हमारी देह पवित्र-आत्मा का मन्दिर है, और हमें उसकी देखभाल करनी चाहिए।

हमारी देह के लिए हमें जो भी चाहिए, परमेश्वर हमें वह सब देने के लिए तैयार है। वह जानता है कि पृथ्वी पर हमारे जीवन के लिए हमें रोटी, कपड़ा और मकान की ज़रूरत है। और उसने ऐसा नहीं होने दिया है कि आपका अपना घर हो, तो आप यक़ीन कर

सकते हैं कि उसकी दिलचस्पी आपको इस योग्य बनाने में है कि आप एक किराए के घर में रह सकें। वह जो जंगल में इस्राएलियों के लिए एक "विश्राम का स्थान" ढूंढ निकालता था (गिनती 10:33), वह आपके लिए भी एक विश्राम का स्थान ढूंढ सकता है। हम यह न समझें कि ये कोई ऐसी आत्मिक बातें नहीं हैं जिनके बारे में हम परमेश्वर से कभी बात नहीं कर सकते। परमेश्वर के बारे में लोगों के मन में जो ग़लत सोच-समझ थी, उसे सही करने के लिए ही यीशु ही अंतिम तीन प्रार्थना-निवेदनों में शारीरिक ज़रूरतों को पहले रखा था।

परमेश्वर द्वारा हमारी पार्थिव ज़रूरतों की देखभालः

हमारी सभी शारीरिक ज़रूरतों को इस एक निवेदन में समाहित किया जा सकता है, "हमारे प्रतिदिन की रोटी हमें दे।"

इस निवेदन में ये विनतियाँ भी शामिल हैं, फ्मुझे एक काम-धंधा दे। मुझे रहने के लिए एक घर दे। मुझे और मेरे परिवार को पहनने के लिए कपड़े दे। मेरे बच्चों को पढ़ाई-लिखाई दे क्योंकि एक दिन उन्हें भी उनकी प्रतिदिन की रोटी की ज़रूरत पड़ेगी।" परमेश्वर की इन सब बातों में दिलचस्पी है। और अगर हम पहले परमेश्वर के राज्य की खोज करने वाले बन जाएं, तो ये सब कुछ हमें यूँ ही मिल जाएगा।

क्या आप जानते हैं कि हम क्यों पृथ्वी की इन सब बातों की - खाने, कपड़े, काम-धंधे, घर, बच्चों की पढ़ाई, आदि कि इतनी चिंता करते हैं? क्योंकि हमारे हृदय की गहराई में, हम ऐसा महसूस करते हैं कि इन भौतिक बातों में, परमेश्वर की हमारी मदद करने में कोई दिलचस्पी नहीं है। हम सोचते हैं कि परमेश्वर सिर्फ हमारी आत्मिक भलाई में ही दिलचस्पी रखता है।

काश, ऐसा हो कि पवित्र-आत्मा एक बार, और हमेशा के लिए, हमें आश्वास्त कर दे कि परमेश्वर को हमारे हरेक भाग में - हमारी देह में, हमारे जीव में, और हमारी आत्मा में दिलचस्पी है! परमेश्वर चाहता है कि हम पृथ्वी पर अपनी दैहिक/शारीरिक ज़रूरतों के लिए उससे माँगें - और वह यह चाहता है कि हम कभी चिंता न करें। इसलिए बाइबल कहती है, फ्किसी भी बात की चिंता न करो, लेकिन हरेक बात में तुम्हारी प्रार्थना और निवेदन के द्वारा, तुम्हारी विनती धन्यवाद के साथ परमेश्वर के सम्मुख प्रस्तुत की जाए" (फिलि. 4:6)।

पृथ्वी के एक पिता पर यह ज़िम्मेदारी नहीं होती कि वह उसके आसपास के सब लोगों की ज़रूरतें पूरी करे। लेकिन उसकी यह ज़िम्मेदारी ज़रूर होती है कि वह अपने परिवार की ज़रूरतें पूरी करे। परमेश्वर इतना भला है कि वह पक्षियों को भी खाने को देता है। तब वह स्वयं अपने बच्चों की ज़रूरतों को और भी क्यों न पूरा करेगा!

एक बार जब एक कनानी स्त्री ने यीशु से उसकी बेटी को चंगा करने के लिए कहा, तो यीशु ने उससे कहा, "पहले बच्चों को तृप्त होने दे" (मरकुस 7:27)। उस स्त्री ने कहा कि वह तो बच्चों की मेज़ पर से गिरने वाली जूठन से ही संतुष्ट हो जाएगी। और उसकी बेटी पूरी तरह से चंगी हो गई थी। ज़रा सोचें। वह जूठन भी दुष्टात्मा से मुक्ति दिलाने के लिए काफी थी। तब फिर कल्पना करें कि पूरी रोटी परमेश्वर के बच्चों के लिए क्या कुछ कर देती! और याद रखें कि यीशु ने क्या कहा था, "पहले बच्चों को तृप्त होने दो।" इसलिए हम साहस के साथ यह प्रार्थना करते हैं, "हे हमारे पिता, हमारी आज की रोटी हमें दे।"

परमेश्वर के प्रबन्ध से संतुष्टः

यह ध्यान दें कि यीशु ने यहाँ हमें भोग-विलास की वस्तुएं माँगना नहीं सिखाया है। हम यह प्रार्थना नहीं कर रहे हैं, "पिता आज हमारे प्रतिदिन की आइसक्रीम हमें दे," बल्कि यह कि फ्हमारे प्रतिदिन की रोटी आज हमें दे!" प्रतिज्ञा यह है, फ्मेरा परमेश्वर तुम्हारी हरेक ज़रूरत को पूरा करेगा" (फिलि. 4:19) - वह सब नहीं जो हम चाहते हैं, बल्कि वह जिसकी हमें ज़रूरत है। जो हम चाहते हैं, और हमें जिसकी ज़रूरत है, इन दोनों के बीच में बहुत बड़ा फ़र्क हो सकता है। आप एक कार चाह सकते हैं, लेकिन परमेश्वर देखता है कि आपको उसकी ज़रूरत नहीं है, इसलिए वह आपको एक कार नहीं देगा। किसी दूसरे व्यक्ति को उसकी ज़रूरत हो सकती है, और वह उसे कार दे सकता है। आपको उस व्यक्ति से ईर्ष्या करने और परमेश्वर से शिकायत करने की कोई ज़रूरत नहीं है। आपके पास जो कुछ है, उससे संतुष्ट रहें। भोग-विलास की वस्तुएं न माँगें। अगर परमेश्वर हमें कुछ भोग-विलास की वस्तुएं देता है, तो हम उन्हें ग्रहण करके परमेश्वर की महिमा के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं। लेकिन अगर वह हमें ऐसी कोई वस्तु नहीं देता, तो भी हम परमेश्वर की महिमा करेंगे।

हम अपनी तुलना दूसरों से न करें। परमेश्वर यह जानता है कि हमारे लिए सबसे अच्छा क्या है। अगर हम उससे रोटी माँगेंगे, तो वह हमें पत्थर नहीं देगा, और अगर हम उससे पत्थर माँगेंगे, तो वह हमें पत्थर नहीं देगा। इसकी बजाय वह हमें रोटी देगा!

उसके प्रबन्ध में संतुष्ट रहें। पौलुस के जीवन का एक भेद यह था कि वह पूरी तरह से संतुष्ट रहता था। फिलिप्पियों 4:11 में वह कहता है, "मैंने हरेक परिस्थिति में संतुष्ट रहना सीख लिया है।"

प्रतिदिन का प्रबन्धः

प्रार्थना यह है, "हमारे प्रतिदिन की रोटी आज हमें दे।" परमेश्वर हमें एक ही समय में बहुत दिनों की रोटी दे सकता है, लेकिन यहाँ सिर्फ एक दिन की शारीरिक ज़रूरतों के लिए विनती की गई है। यीशु ने हमसे कहा है कि हमें यह चिंता भी नहीं करनी है कि कल क्या होने वाला है। परमेश्वर यह नहीं चाहता कि हम भविष्य की चिंता करें। हमें उस पर दिन-प्रतिदिन निर्भर रहना है।

परमेश्वर ने इस्राएलियों को यह पाठ जंगल में एक अद्भुत रीति से सिखाया था। उन्हें हरेक सुबह मन्ना बटोरना होता था। वे कई दिनों के लिए एक साथ नहीं बटोर सकते थे। उन्हें दिन-प्रतिदिन परमेश्वर पर निर्भर रहना पड़ता था। उन्हें इस तरह 40 सालों तक रहना पड़ा था। क्या आपको यह लगता है कि उनके लिए यह एक तनावपूर्ण बात थी? नहीं। मुझे यक़ीन है इसमे उन्हें कोई तनाव नहीं हुआ होगा। बल्कि यह बहुत उत्तेजना से भरी बात रही होगी! अगर परमेश्वर हमें एक ही समय में हमें बहुत दे देगा, तो हमारे हृदय उससे दूर हो जाएंगे। इसलिए परमेश्वर हमारे हालातों को इस तरह तैयार करता है कि हमारे भौतिक परिमण्डल में अक्सर कुछ-न-कुछ ज़रूरत पैदा होती रहती है - क्योंकि आत्मिक से ज़्यादा भौतिक बातें हमें छूती हैं। परमेश्वर वे ज़रूरतें पैदा होने देता है कि हम बार-बार उसकी तरफ मुड़ते रहें। इस तरह हम परमेश्वर पर निरंतर निर्भर रहने का पाठ सीखते हैं।

हालांकि मन्ना स्वर्ग से गिरता था, फिर भी परमेश्वर उसे सीधा उनके मुँह में नहीं गिराता था। इस्राएलियों को सुबह-सवेरे उठकर उसे इकट्ठा करने के लिए जाना पड़ता था। आलसी लोगों को कुछ न मिलता होगा। इसलिए, जब हम यह प्रार्थना करते हैं "हमारे प्रतिदिन की रोटी हमें दे," तो हम परमेश्वर से कोई ऐसा चमत्कार करने के लिए नहीं कह रहे हैं कि हमारे कोई काम किए बिना ही

हमारे प्रतिदिन की रोटी हमें मिल जाए। नहीं। बाइबल कहती है, "अगर कोई मनुष्य काम करना न चाहे, तो वह खाने भी न पाए" (2 थिस्स. 3:10)। यीशु ने कहा कि परमेश्वर पक्षियों को खिलाता है। लेकिन वह उनके मुँह में नहीं डालता है। उन्हें भी जाकर उनका खाना ढूंढना पड़ता है। इसलिए परमेश्वर हमसे यह अपेक्षा भी रखता है हम कठोर मेहनत करने वाले हों, और उसमें भरोसा भी रखें। विश्वास कठोर मेहनत का विकल्प नहीं हो सकता।

परमेश्वर की इच्छा पूरी करने के लिए स्वास्थ्यः

यह प्रार्थना पिछले निवेदन से भी जुड़ी हुई हैः "तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में पूरी होती है वैसे पृथ्वी पर भी हो।" हम परमेश्वर से इसलिए शारीरिक स्वास्थ्य और शक्ति माँगते हैं कि हम उसकी इच्छा पूरी कर सकें।

जब बीमार लोगों ने मुझे उनकी चंगाई के लिए प्रार्थना करने के लिए कहा है, तो मैंने अक्सर सोचा है, "क्या यह इसलिए स्वस्थ होना चाहता है कि फिर परमेश्वर की सेवा करने का बल प्राप्त कर सके? या यह अपने लिए जीना चाहता है? क्या हम परमेश्वर से इसे चंगा करने के लिए कहें कि फिर यह संसार के लिए जी सके?" यीशु ने हमारी शारीरिक ज़रूरतों को पूरा करने के लिए इसलिए प्रार्थना करना सिखाया कि हम अपनी नहीं परमेश्वर की इच्छा पूरी कर सकें।

एक पारिवारिक प्रार्थनाः

यह ध्यान दें कि प्रार्थना "हमें दे" है "मुझे दे" नहीं है।

जो उनके जीवन में परमेश्वर को पहला स्थान देते हैं, वे यह पाएंगे कि वे स्वयं को दूसरे स्थान पर नहीं रख सकेंगे। हम एक परिवार के सदस्य हैं जो पिता की मेज़ के चारों तरफ बैठे हैं, और पिता अपनी मेज़ पर ऐसे स्वार्थी बच्चे नहीं चाहता जो दूसरों के बारे में

सोचे बिना सारा खाना ख़ुद ही खा लेना चाहते हैं। ऐसा व्यवहार मन-न-फिराए लोगों में भी अभद्रता होती है। फिर एक मसीही के लिए यह और भी कितना ज़्यादा अभद्र होगा!

याद रखें कि यीशु ने न्याय के दिन के बारे में क्या कहा था। जब वह लोगों का न्याय करने के लिए न्यायासन पर बैठेगा, तो वह बहुत से लोगों से यह कह देगा, "तुमने मुझे भूखा देखा था, लेकिन तुमने मुझे खाने को नहीं दिया। तुमने मुझे नंगा देखा था, लेकिन तुमने मुझे कपड़े नहीं पहनाए। मैं बीमार था, लेकिन तुम मुझे देखने नहीं आए।" और वे उससे कहेंगे, "प्रभु, यह कब हुआ था? हमने तुझे कभी नंगा या भूखा नहीं देखा?" और प्रभु उनसे कहेगा, फ्मैं उनमें रहता हूँ जिनका नया जन्म हुआ है; और जब तुमने मेरे उस भाई की ज़रूरत को देखा था, तो तुम्हें यह समझ नहीं आया था कि वह मेरी ज़रूरत थी। मैं भूखा और प्यासा था" (मत्ती 25:31-46 - भावानुवाद)।

स्वर्ग और नर्क में यह मूल फ़र्क है। नर्क पाप से, स्वकेन्द्रीयता से भरा हुआ है। हरेक व्यक्ति सिर्फ अपने लिए ही जीता है जिसमें परमेश्वर या दूसरों के लिए कोई जगह नहीं है। स्वर्ग में इससे उलटा है। परमेश्वर पहले स्थान में है, और बाक़ी उसके बाद हैं।

मैंने एक ऐसे व्यक्ति की कहानी सुनी जिसने एक सपना देखा, जो स्वर्ग और नर्क का एक दृष्टान्त था। वह पहले नर्क में गया। उसने वहाँ बहुत से लोगों को एक मेज़ के चारों तरफ बैठे देखा जिस पर बहुत सारा स्वादिष्ट खाना रखा था। फिर वे सभी कमज़ोर, बीमार और दुःखी थे। उसे पता चला कि वे उनके सामने रखे खाने को नहीं खा सकते थे क्योंकि उन सबके हाथों के साथ चार फुट लम्बे चम्मच जुड़े हुए थे। निश्चय ही, अगर आपके हाथों के साथ

चार फुट लम्बे चम्मच जुड़े होंगे तो आपके लिए आपके सामने रखे खाने को खाना सम्भव न होगा।

फिर उसके सपने में वह व्यक्ति स्वर्ग में गया, और वहाँ भी उसने मेज़ पर वही स्वादिष्ट खाना रखा हुआ देखा, और वहाँ बैठे लोगों के हाथों के साथ भी चार फुट लम्बे चम्मच जुड़े हुए थे। लेकिन वे सभी स्वस्थ और सशक्त थे। तब उसने उनमें से एक से पूछा, "तुम इतने स्वस्थ और सशक्त कैसे हो?" और उस व्यक्ति ने जवाब दिया, "जैसा कि तुम देख ही रहे हो, मुझे मालूम है कि मैं स्वयं नहीं खा सकता हूँ, इसलिए मैं अपना हाथ बढ़ाकर मेज़ पर बैठे किसी दूसरे को खिला देता हूँ, और मेज़ पर आगे बैठा दूसरा कोई व्यक्ति मुझे अपने चम्मच से खिला देता है। इस तरह हममें से हरेक को पर्याप्त खाना मिल जाता है।"

तब यह व्यक्ति उसके सपने में वापिस नर्क में गया और उसने वहाँ के लोगों से कहा, "तुम सब लोग इस तरह खा सकते हो। तुममें से हरेक को किसी दूसरे को अपने खाने में से खाने देना चाहिए, और मेज़ पर आगे बैठे किसी दूसरे व्यक्ति को खिलाना चाहिए।" लेकिन उन सभी ने उसे एक सा जवाब दिया, "मैं यह कैसे मान लूँ कि कोई दूसरा मुझे उसके खाने में से खाने देगा!"

नर्क की और अंततः वहाँ जाने वालों की यह विशेषता होगी कि वे एक हड्डी के लिए लड़ने वाले स्वार्थी कुत्तों जैसे स्वभाव वाले लोग होंगे। उनकी दिलचस्पी सिर्फ उनकी अपनी प्रतिदिन की रोटी में होगी।

अगर आप मसीह में अपने बहन-भाइयों की ज़रूरतों में दिलचस्पी नहीं रखेंगे, तो आप अपनी प्रतिदिन की रोटी के लिए प्रार्थना नहीं कर सकेंगे।

अब्राहम के जीवन में एक ऐसा समय आया था, जब उसने सारा के द्वारा एक पुत्र पाने के लिए 25 साल तक इंतज़ार किया था, और फिर भी उसे वह पुत्र प्राप्त नहीं हुआ था। वह प्रार्थना पर प्रार्थना करता रहा था। लेकिन उसे कोई जवाब नहीं मिला था। जब वह गरार में था, तब उसने यह देखा कि परमेश्वर ने उस जगह की स्त्रियों को बाँझ बनाने द्वारा उन लोगों का न्याय किया था (उत्पत्ति 20:17)। यह याद रखें कि उस समय तक अब्राहम की उस प्रार्थना का जवाब भी मिला था जो वह स्वयं अपनी पत्नी के लिए कर रहा था। परमेश्वर ने अब्राहम की प्रार्थना सुन ली और उन बाँझ स्त्रियों को संतानें दीं। लेकिन क्या परमेश्वर वहीं रुक गया था? नहीं। उसने उसी समयकाल में सारा को वह पुत्र दिया जिसकी उससे प्रतिज्ञा की गई थी (उत्पत्ति 21:1)। जब अब्राहम ने दूसरों के लिए प्रार्थना की, तब परमेश्वर ने उसकी ज़रूरत को भी पूरा किया था।

जो पहले परमेश्वर के बारे में सोचते हैं और फिर लोगों के बारे में, वे परमेश्वर का सर्वश्रेष्ठ पाते हैं। "अय्यूब ने अपने दोस्तों के लिए प्रार्थना की, तब परमेश्वर ने उसका दुःख दूर किया और उसका सब कुछ उसे लौटा दिया" (अय्यूब 42:10)। यह परमेश्वर का तरीक़ा है।

हमारी शारीरिक ज़रूरतों के बारे में यह निवेदन, दो दूसरी विनतियों के बीच में रखा हुआ है। इसकी एक तरफ है, "तेरी इच्छा स्वर्ग में पूरी होती है वैसे ही पृथ्वी पर भी हो," और दूसरी तरफ है "हमारे अपराधों को क्षमा कर जैसे हम भी अपने अपराधियों को क्षमा करते हैं।" क्या अपने जीवन में आप परमेश्वर की इच्छा पूरी करने और उन्हें क्षमा करने के लिए उत्सुक हैं जिन्होंने आपके खिलाफ़ अपराध किया है? या आप उस बच्चे की तरह हैं जो एक

क्रीम वाला बिस्किट दिए जाने पर उसके बीच की क्रीम ही खाना चाहता है? क्या आपकी दिलचस्पी सिर्फ अपनी भौतिक ज़रूरत पूरी करने - "हमारे प्रतिदिन की रोटी आज हमें दे" - और इसके आगे और पीछे की विनती को अनदेखा करना चाहते हैं?

इस तरह, हम मसीहियों को दो अतिवादी बिन्दुओं पर पाते हैं। कुछ ऐसे अति-आत्मिक होते हैं कि वे भौतिक वस्तुओं के लिए प्रार्थना करने को ग़लत मानते हैं, दूसरे सिर्फ अपने शारीरिक ज़रूरतों के लिए ही प्रार्थना करते हैं।

धन्य हैं वे यीशु द्वारा सिखाए गए संतुलन को समझते हैं।

अध्याय 7

पापों की क्षमा

"हमारे अपराधों को क्षमा कर, जैसे हम भी अपने अपराधियों को क्षमा करते हैं।"

पाप परमेश्वर का कर्ज़ है - चाहे वह पाप परमेश्वर के मानक मापदण्डों तक न पहुँच पाना हो, या सीमा का उल्लंघन करते हुए उससे आगे निकल जाना हो जिसकी अनुमति परमेश्वर ने दी है।

विवेक का मूल्यः

पृथ्वी पर रचे गई सभी जीवों में, सिर्फ मनुष्य ही एक ऐसा जीव है जिसे कुछ ग़लत करने की वजह से उसके अपराध का बोध होता है। यही एक ऐसी बात है जो उसे पशुओं से अलग करती है।

एक कुत्ते को कुछ ग़लत करने का तब तक कोई अहसास नहीं होता जब तक उसका प्रशिक्षक उसे इसका अहसास न कराए। लेकिन अगर मनुष्य की बात करें, तो आप एक ऐसे जंगल में चले जाएं जिसमें रहने वाले मनुष्यों ने धर्म के बारे में कभी कुछ नहीं सुना है, जिन्हें किसी ने कभी कुछ नहीं सिखाया है, और जिन्होंने कभी बाइबल नहीं पढ़ी है, और आप यह पाएंगे कि वहाँ भी लोगों में अपराध का बोध है। उनका विवेक उन्हें बताता है कि उन्होंने अपने रचने वाले को शोकित किया है, इसलिए वे किसी-न-किसी रूप में उसे ख़ुश करने की कोशिश करते रहते हैं। लेकिन आपको कहीं भी एक धार्मिक बन्दर या धार्मिक कुत्ता नहीं मिलेगा!

हमारा विवेक हमें परमेश्वर द्वारा दिए गए सबसे बड़े वरदानों में से एक दान है। जब परमेश्वर के साथ हमारे रिश्ते में कुछ बिगड़

जाता है, तो विवेक हमें बता देता है - वैसे ही जैसे पीड़ा हमें बता देती है कि हमारी देह में कुछ बिगड़ गया है। इसलिए हमें सचेत रहते हुए अपने विवेक को हर समय संवेदनशील बनाए रखना चाहिए।

ऐसा कहने वाले अनेक लोग हैं, "पिता, हमारे अपराध क्षमा कर," जो यह नहीं समझते कि जब तक हम उसके सम्मुख अपने पापों का अंगीकार नहीं करते, तब तक हम उससे हमारे पापों को क्षमा करने के लिए नहीं कह सकते। हमें पहले पूरी ईमानदारी से अपने पापों को मानना होगा।

परमेश्वर का वचन कहता है, "जो अपने अपराध छुपाता है, वह सफल नहीं होगा, लेकिन जो उन्हें मानकर छोड़ देता है, उस पर दया की जाएगी" (नीति. 28:13)। जो अपने अपराध छुपाता है, वह यह प्रार्थना कर सकता है, "मुझे क्षमा कर, मुझे क्षमा कर।" लेकिन उसे क्षमा नहीं किया जाएगा। इस पद में आगे लिखा है, "लेकिन जो उन्हें मानकर छोड़ देता है, उस पर दया की जाएगी।" बाइबल यह भी कहती है, "अगर हम अपने पापों को मान लें (यह हमारा काम है) तो वह (परमेश्वर) हमारे पापों को क्षमा करने और हमें सब अधर्म से शुद्ध करने में विश्वासयोग्य और धर्मी है (यह परमेश्वर का काम है)" (1 यूहन्ना 1:9)। अगर हम अपना काम करेंगे, तो हम यक़ीन कर सकते हैं कि परमेश्वर उसका काम करने में ज़रूर विश्वासयोग्य रहेगा!

आदम जब से पाप में गिरा है, तब से मनुष्य का झुकाव उसके पाप को मानने की तरफ नहीं उसे छुपाने की तरफ हो गया है। जब आदम और हव्वा ने पाप किया, तब उनकी पहली प्रतिक्रिया क्या थी? क्या वह यह थी कि भाग कर परमेश्वर के पास जाएं और उससे यह कह दें, "हे परमेश्वर, हमने पाप किया है। हमने

वही किया है जिसे तूने हमें न करने के लिए कहा था?" नहीं। उन्होंने ऐसा नहीं किया था। वे परमेश्वर से दूर भाग गए थे और उन्होंने छुपने की कोशिश की थी। यह कितनी मूर्खता का काम था! क्या आदम और हव्वा सर्वशक्तिशाली परमेश्वर की नज़रों से बचकर एक पेड़ के पीछे छुप सकते थे? पाप वास्तव में एक मनुष्य को मूर्ख बना देता है।

मनुष्य की एक दूसरी विशिष्टता उसके पाप का दोष दूसरों पर लगा देना है। जब परमेश्वर ने आदम के पाप को जान लिया, तो उसने उससे पूछा, "क्या तूने उस पेड़ में से खाया है?" तब आदम का क्या जवाब था? आदम ने अपनी पत्नी पर दोष लगाया। और उसकी पत्नी ने सर्प पर दोष लगाया!

आदम और हव्वा में से यह स्वभाव हम सब में उतर आया है। हम अपने आपको हमेशा सही ठहराने की कोशिश करते रहते हैं, और यह दावा करते रहते हैं कि हमारे द्वारा की गई ग़लतियों के लिए हम ज़िम्मेदार नहीं हैं। और जब हम रंगे-हाथों पकड़े जाते हैं, तो हम कह देते हैं कि हमने एक कमज़ोर क्षण में या दबाव में ऐसा किया था। हम अपने पाप को मान लेने की बजाय उसे ढांपने की कोशिश करते हैं। और इस वजह से ही हम परमेश्वर की क्षमा नहीं पा सकते।

ज्योति में चलनाः

जब यीशु ने ज्योति में चलने की बात की, तब उसने कहा, फ्मनुष्यों ने ज्योति की अपेक्षा अंधकार को अधिक प्रिय जाना क्योंकि उनके काम बुरे थे। क्योंकि हरेक जो बुराई करता है ज्योति से बैर रखता है और ज्योति के पास नहीं आता कि कहीं उसके काम प्रकट न हो जाएं। लेकिन वह जो सत्य पर चलता है, ज्योति के पास आता है" (यूहन्ना 3:19-21)।

यहाँ दर्शाए गए फर्क़ को देखें! एक तरफ, यीशु ने कहा कि हरेक जो बुराई करता है, ज्योति से बैर रखता है। "बुराई" का उलटा क्योंकि "अच्छाई" है, इसलिए यह सोचा जा सकता है कि फिर यीशु आगे बढ़ते हुए यह कहता कि हरेक जो अच्छाई करता है, ज्योति के पास आता है। लेकिन उसने यह नहीं कहा। उसने यह कहा कि हरेक जो सच्चाई पर चलता है, वह ज्योति के पास आता है।

क्या आपको इसमें फर्क़ नज़र आया? यीशु पहले अच्छाई नहीं सच्चाई चाहता है। दूसरे शब्दों में, यीशु ने कहा, "वह मनुष्य जो बुरा (दुष्ट) है, बेईमान है। लेकिन वह मनुष्य जो ज्योति के पास आता है, हालांकि वह एक सिद्ध मनुष्य नहीं है, फिर भी वह एक ईमानदार मनुष्य है।" अगर हम ज्योति में सिर्फ तभी आ पाते जब हम एक सिद्ध रूप में अच्छे होते, तो हममें से कोई कभी भी ज्योति के पास नहीं आ पाता। लेकिन परमेश्वर अपने पास आने के लिए ऐसे लोगों को आमंत्रित करता है जो ईमानदार हैं। ये ईमानदार लोग फिर एक क्रमिक रूप में अच्छे बनते जाएंगे।

हम यह प्रार्थना - "हमारे अपराध क्षमा कर" - सिर्फ तभी कर सकते हैं जब हम ईमानदार होने के लिए तैयार होंगे। आपमें कमियाँ हो सकती हैं, लेकिन अगर आप अपनी कमियों के बारे में ईमानदार हैं, तो आप परमेश्वर की ज्योति में आ सकते हैं। हरेक जो सच्चाई से चलता है - जो ईमानदार है, वह ज्योति के पास आकर अपने पाप का अंगीकार कर सकता है और तब उसका वह पाप मिटा दिया जाएगा।

"अगर हम ज्योति में चलें जैसे वह स्वयं ज्योति में है, तो हमारी एक-दूसरे के साथ सहभागिता है, और उसके पुत्र यीशु का लहू हमें सब पापों से शुद्ध करता है" (1 यूहन्ना 1:7)।

ऐसे बहुत लोग हैं जो इस पद के दूसरे भाग का दावा करते घूमते हैं, "यीशु का लहू हमें सब पाप से शुद्ध करता है।" लेकिन इसका इस तरह से उल्लेख करना सही नहीं है। यीशु का लहू सिर्फ उन्हीं को शुद्ध करता है जो उस पद के पहले भाग की शर्त को पूरा करते हैं - जो ज्योति में चलते हैं।

मैं इसमें एक चित्रण इस्तेमाल करना चाहता हूँ। मान लें कि मेरे आसपास अंधेरा है। तब ज्योति में आने का अर्थ अपने आपको उजागर/उघाड़ा करना होगा। अगर मेरी कमीज़ मैली है, तो वह नज़र आएगी। ज्योति ने सिर्फ मेरी कमीज़ के मैले होने को उजागर किया है। जिस बात को मैं अपने अन्दर देखता हूँ, यह उसे छुपाने की बजाय ईमानदारी से प्रकट करना है। ज्योति में आने का यह मूल अर्थ है।

हमें यह बात साफ़ तौर पर समझ लेने की ज़रूरत है, क्योंकि यह न सिर्फ परमेश्वर के साथ बल्कि हमारे साथी-मनुष्यों के साथ के हमारे सम्बंधों पर भी लागू होती है।

मसीहियत में एक सीधा (खड़ा) सम्बंध है जो हमारा परमेश्वर के साथ है, और दूसरा पट (समस्तर) सम्बंध है जो हमारे साथी-विश्वासियों के साथ है। आप एक को छोड़ कर दूसरे को नहीं ले सकते। अगर आप अपने साथी-विश्वासियों के साथ सहभागिता में नहीं हैं, तो आप परमेश्वर के साथ भी सहभागिता नहीं कर सकते। "अगर कोई यह कहता है, 'मैं परमेश्वर से प्रेम करता हूँ', और अपने भाई से घृणा करता है, तो वह झूठा है" (1 यूहन्ना 4:20)। अगर आप वास्तव में परमेश्वर से प्रेम करते हैं, तो आप अपने साथी-विश्वासी से भी प्रेम करेंगे।

एक सही समस्तर (पट) सम्बंधः

जैसे हमें परमेश्वर के खिलाफ़ किए गए पापों का उसके आगे अंगीकार करना होता है, वैसे ही हमें अपने साथी-विश्वासियों के खिलाफ़ किए गए अपराधों का भी उनके आगे अंगीकार करना होता है। ऐसे अंगीकार के बिना कोई क्षमा नहीं हो सकती।

अगर हमने किसी से धन की धोखाधड़ी की है, तो हमें वह उसे लौटा देना होगा, वर्ना परमेश्वर हमें क्षमा नहीं करेगा। हमारा मन-फिराव सच्चा है, यह दर्शाने का एकमात्र तरीक़ा यह है कि हमने जिस व्यक्ति के खिलाफ़ अपराध किया है, हम उसके आगे अपने अपराध का अंगीकार करें, और हमने उससे जो कुछ ग़लत तरीक़े से लिया है, वह उसे वापिस लौटाएं।

अगर आपने रेलगाड़ी में बिना टिकट यात्रा की है, तो परमेश्वर के पास जाकर सिर्फ यह कह देना आसान होगा, "मुझे अफसोस है कि मैंने रेलवे के साथ बेईमानी की है।" लेकिन उस ग़लती की क़ीमत चुकाने का तरीक़ा - वह तरीक़ा जिसके द्वारा आप अपने मन-फिराव की सच्चाई साबित कर सकते हैं - टिकट के काउन्टर पर जाकर, उस यात्रा का टिकट ख़रीद कर उसे फाड़ देना होगा। वर्ना आपका मन-फिराव सिर्फ खोखले शब्द हैं।

यही वजह कि ज़्यादातर लोग परमेश्वर के साथ एक गहरी सहभागिता में प्रवेश नहीं कर पाते। वे सिर्फ अपने होठों से पछतावा करते हैं उनके हृदयों से नहीं। वे परमेश्वर के सामने तो अपने पापों को मान लेते हैं, लेकिन वे अपने साथी-विश्वासियों के खिलाफ़ किए गए पापों को उनके सामने नहीं मानते।

किसी से यह कहना कि "मैं अपनी भूल स्वीकार करता हूँ। मैंने ग़लती की है, मुझे क्षमा करना", सबसे मुश्किल काम होता है। क्यों? क्योंकि इसमें हमारी ख़ुदी को मरना पड़ता है। हम सभी

मूल रूप में घमण्डी होते हैं, अपने आपको नम्र व दीन नहीं करना चाहते, और यह नहीं मानना चाहते कि हमने कोई ग़लती की है!

ऐसा क्यों है कि हम एक पवित्र परमेश्वर के सामने तो अपने पापों का अंगीकार करने के लिए स्वयं को आज़ाद महसूस करते हैं, लेकिन एक अपवित्र भाई के आगे हमें अपने पाप का अंगीकार करने में मुश्किल महसूस होती है? इसका कारण शायद यह हो सकता है कि बंद कमरे में परमेश्वर के आगे अंगीकार करने का दावा करने के बाद भी, असल में हम सिर्फ ख़ुद से ही अंगीकार कर रहे हों! हम परमेश्वर के आगे अंगीकर ही न कर रहे हों! हम अपने आपको धोखा दे रहे हैं। आपने वास्तव में परमेश्वर के आगे अपने आपको दीन किया है या नहीं, इसकी परख यह होगी कि आप ऐसे किसी भी व्यक्ति से क्षमा-याचना के लिए तैयार रहेंगे जिसका आपने नुक़सान किया है।

भारतीय संस्कृति में, यह विचार प्रबल है कि पत्नियों को ही उनके पतियों से क्षमा माँगनी चाहिए - इस क्रम को पलटा नहीं जा सकता। यह ऐसा है मानो पुरुष कोई श्रेष्ठ प्रजाति है!

जहाँ तक क्षमा माँगने की बात है, तो इसमें छोटा या बड़ा होने जैसी कोई बात ही नहीं होती। चाहे आप एक कार्यालय में उसके निदेशक ही क्यों न हो, लेकिन अगर आपने सबसे छोटे कर्मचारी के साथ भी कुछ ग़लत किया है, तो अपने आपको नम्र व दीन करके आपको उसके पास जाना और यह कहना चाहिए, "मुझसे भूल हो गई है। मैं आपसे अपनी ग़लती की क्षमा माँगता हूँ।" सच्ची मसीहियत इससे ज़रा भी कम नहीं है।

अनेक कलीसियाओं में टूटे हुए सम्बंधों वाले ऐसे बहुत लोग हैं जो उनके आपसी मामले निपटाने के लिए एक-दूसरे से नहीं मिलते। उन्हें एक-दूसरे से शिकायतें होती हैं, और वे एक-दूसरे के घर नहीं

जाते। और फिर भी वे अपने आपको मसीही कहते हैं! वे कदापि मसीही नहीं हैं। अगर ऐसे लोग ये सोचते हैं कि वे परमेश्वर के राज्य में हैं, तो वे सिर्फ अपने आपको धोखा दे रहे हैं।

अगर आप एक भाई से बात और मुलाक़ात नहीं करते और फिर भी आप प्रभु-भोज में उसके साथ शामिल हो रहे हैं, तो यह ईश-निन्दा है। ऐसी दशा में आप परमेश्वर के साथ संगति नहीं कर सकते। अगर आपके साथी-विश्वासी के साथ आपका समस्तरीय सम्बंध सही नहीं है, तो आपका परमेश्वर के साथ सीधा सम्बंध भी सही नहीं हो सकता।

लेकिन अगर हमने परमेश्वर और मनुष्य दोनों के सामने एक असली अंगीकार किया होगा, तो परमेश्वर हमें पूरी तरह से ऐसा शुद्ध कर देगा कि हमारे भूतकाल की स्मृति भी फिर उसके सामने नहीं रहेगी। और अगर वह हमारे पिछले पापों को दोबारा याद नहीं करता, तो हमें उनके बारे में सोचने की क्या ज़रूरत है (इब्रा. 8:12)?

परिपूर्ण क्षमाः

बाइबल कहती है कि हम यीशु मसीह के लहू द्वारा धर्मी ठहराए गए हैं (रोमियों. 5:9)। जब परमेश्वर हमें शुद्ध करता है, तब वह हमें धर्मी भी ठहराता है। "धर्मी ठहराए जाने" का अर्थ है, "जैसे मैंने जीवन में कभी कोई पाप ही न किया हो और मानो अब मैं पूरी तरह से धर्मी हूँ।" यह कितनी अद्भुत बात है!

हम अपने पाप का ऐसा चित्रण कर सकते हैं मानो वह एक ब्लैक-बोर्ड पर लिखे बहुत से अक्षर हों। अब वह ब्लैक-बोर्ड एक गीले कपड़े से साफ कर दिया गया है। अब जब आप उस ब्लैक-बोर्ड को देखते हैं तो आपको क्या नज़ार आता है? कुछ भी नहीं। ऐसा

लगता है मानो उस पर कभी कुछ लिखा ही न गया हो। यीशु का लहू हमें इस तरह से शुद्ध करता है - गहराई में और पूरी तरह। अगर हमने परमेश्वर के सामने अपने पापों का वास्तव में अंगीकार कर लिया है, तब उनका एक ही बार अंगीकार काफी है। परमेश्वर उन्हें तुरन्त मिटा देता है। और उसका यह वादा है, फ्मैं उनके पापों को फिर कभी याद नहीं करूँगा" (इब्रा. 8:12)। जब हमें यह समझ आता है कि हमारे पाप वास्तव में क्षमा हो गए हैं, और अब हमें बार-बार प्रभु के सामने उनका अंगीकार करने की ज़रूरत नहीं रही है, तो हम अपने हृदयों में कैसा विश्राम पा लेते हैं।

यहाँ मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि जब हम यह प्रार्थना करें, "हमारे अपराध क्षमा कर," तो हम उनका ख़ुलासा करें। अनेक लोग एक सामान्य तौर पर यह कहते हैं, "प्रभु, मैंने बहुत पाप किए हैं।" इसका अर्थ है कि वे निश्चित नहीं हैं। ऐसे अंगीकार से कोई फायदा नहीं है, क्योंकि इसमें आप यह इशारा भी कर रहे हैं कि शायद आपने कोई पाप ही नहीं किया है!

पापों का साफ तौर पर उल्लेख करना और यह कहना सबसे अच्छा रहता है, "प्रभु, मैंने यह पाप किया है। मुझे उस व्यक्ति से यह शिकायत है। मैंने उसे क्षमा नहीं किया और मैंने उससे ईर्ष्या की है। इसमें मेरा उद्देश्य पूरी तरह स्वार्थ से भरा था। यह मैंने अपने आपको ऊँचा उठाने के लिए किया था, आदि।" आपको पूरी तरह से ईमानदार होना है।

हमारे सारे ज्ञात पापों का अंगीकार कर लेने के बाद, हमें फिर भी दाऊद की तरह यह प्रार्थना करनी है, "मेरे गुप्त पापों को क्षमा कर दे" (भजन. 19:12)।

दूसरों को क्षमा करनाः

इस प्रार्थना में यह क्षमा-याचना सबसे महत्वपूर्ण निवेदनों में से एक है क्योंकि यही एकमात्र ऐसा निवेदन है जिसे यीशु ने उसकी प्रार्थना के अंत में दोहराया है।

क्या आपने इस बात पर ध्यान दिया है?

प्रभु की इस प्रार्थना के 6 निवेदनों में, यीशु ने अंतिम निवेदन पर ख़ास तौर पर ज़ोर दिया है। उसने कहा, "अगर तुम मनुष्यों के अपराधों को क्षमा करोगे, तो तुम्हारा स्वर्गीय पिता तुम्हारे अपराध क्षमा करेगा। लेकिन अगर तुम मनुष्यों को क्षमा न करो, तो तुम्हारा पिता भी तुम्हारे अपराध क्षमा नहीं करेगा" (मत्ती 6:14,15)।

अनेक मसीही परमेश्वर के साथ पूर्ण और मुक्त सहभागिता नहीं कर पाते क्योंकि उन्होंने इस निवेदन को गंभीरता से नहीं लिया है।

यीशु ने एक राजा का दृष्टान्त सुनाते हुए कहा कि जब राजा अपना हिसाब-किताब कर रहा था, तो उसे अपने एक ऐसे सेवक के बारे में पता चला जो उसका 4 करोड़ का कज़र्दार था। और जब उस सेवक ने कहा, "मेरे पास तेरा क़र्ज चुकाने के लिए कुछ नहीं है। कृपा करके मेरा क़र्ज माफ कर दे," तो राजा ने उसका पूरा क़र्ज माफ कर दिया। वह सेवक चला गया, और उसे एक ऐसा सेवक मिला जो उसका सिर्फ 40 का कज़र्दार था। उसने उसका गला पकड़ा, उसे अदालत में ले गया, और कारावास में डलवा दिया। जब राजा ने यह सुना तो उसने उस निर्दयी सेवक को बुलवाया और कहा, "मैंने तेरा 4 करोड़ का क़र्ज पूरी तरह माफ किया था, और तू 40 का क़र्ज भी माफ नहीं कर सका?" और उसने उसे यातना देने वाले के हाथों में सौंप दिया। फिर यीशु ने कहा, "इसी तरह, अगर तुम में से प्रत्येक अगर अपने भाई को

हृदय से क्षमा न करे, तो मेरा स्वर्गीय पिता भी तुम्हारे साथ वैसा ही करेगा" (मत्ती 18:35)। वे यातना देने वाले दुष्टात्माएं हैं जिन्हें हमें तब तक सताने की अनुमति दी जाएगी जब तक हम दूसरों पर दया करना नहीं सीख लेते।

यीशु ने इस दृष्टान्त को यह दर्शाने के लिए इस्तेमाल किया कि परमेश्वर ने हमारा कितना बड़ा क़र्ज़ माफ किया है, लेकिन अगर हम किसी ऐसे व्यक्ति को क्षमा नहीं करते जिसने हमें थोड़ा सा दुःख दिया हो, तो हम कितने निर्दयी और दुष्ट हैं।

क्या किसी ने आपको कोई नुक़सान पहुँचाया है? शायद किसी ने आपके बारे में झूठी बातें फैलाई हों? शायद आपके पड़ौसी, आपकी पत्नी, आपके पिता, या फिर आपकी सास ने आपका कुछ नुक़सान किया हो। शायद किसी बात में वे आपके जीवन में बर्बादी की वजह बने हों। शायद आपका ऑपरेशन करने वाले डॉक्टर ने कोई ऐसी ग़लती कर दी है जिससे आपका जीवन पीड़ा से भर गया है। लेकिन प्रभु कहता है कि वे सारे पाप मिलकर भी उस क़र्ज की तुलना में बहुत ही छोटे हैं जो आपको परमेश्वर को चुकाना था, और जिसे परमेश्वर ने क्षमा कर दिया है। इसलिए ऐसा कोई कारण नहीं है कि आप उन सभी लोगों को अपने हृदय से एक मुक्त रूप में क्षमा न कर सको।

मत्ती 18:35 का ज़रूरी हिस्सा है "अपने हृदय से।" अगर आप पूरे हृदय से अपने साथी को क्षमा करने के लिए तैयार नहीं हैं, तो परमेश्वर के पास आकर यह कहने में अपना समय बर्बाद न करें, "हमारे अपराधों को क्षमा कर," क्योंकि तब परमेश्वर आपकी प्रार्थना को नहीं सुनेगा। अगर इस पूरे संसार में एक भी ऐसा व्यक्ति है जिसे आपने क्षमा नहीं किया है, तो आप स्वयं भी क्षमा नहीं पा सकते, और आप अनन्त रूप में नाश हो जाएंगे - क्योंकि क्षमा

पाए बिना परमेश्वर की उपस्थिति में कोई जीवात्मा प्रवेश न करने पाएगी। जितना हम समझ पाते हैं, इस बात की गंभीरता उससे बहुत बढ़कर है।

प्रार्थना यह है, "हमारे अपराधों को क्षमा कर, जैसे हम अपने अपराधियों को क्षमा करते हैं।" परमेश्वर यह देखता है कि हमने अपने अपराधियों को कैसे क्षमा किया है। यीशु ने यह सिखाया कि परमेश्वर हमें उसी माप के अनुसार देता है जिस माप से हमने दूसरों के लिए मापा है। उसने कहा, फ्दो तो तुम्हें भी दिया जाएगा। वे तुम्हारी गोद में पूरा-पूरा माप, दबा-दबाकर, हिला-हिलाकर उभरता हुआ डालेंगे। क्योंकि जिस माप से तुम दूसरों के लिए मापते हो, उसी माप से तुम्हारे लिए भी मापा जाएगा" (लूका 6:38)।

इसका अर्थ है कि अगर दूसरे को देने के लिए आप एक छोटा चम्मच इस्तेमाल करते हैं, तो आपकी प्रार्थना का जवाब देते समय परमेश्वर उसी चम्मच को इस्तेमाल करेगा। इसलिए जब हम परमेश्वर से किसी महान् और सामर्थी बात के लिए प्रार्थना करें और परमेश्वर एक छोटा चम्मच लेकर हमें थोड़ा ही दे, तो इसकी वजह अक्सर यही होगी कि हमने दूसरों को देने के लिए वही चम्मच इस्तेमाल किया था। हम दूसरों को देने के लिए जितना बड़ा चम्मच इस्तेमाल करेंगे, परमेश्वर हमें देने के लिए भी उतना ही बड़ा चम्मच इस्तेमाल करेगा। हमारे साथ परमेश्वर द्वारा किए जाने वाले व्यवहार में यह एक बदला-न-जाने वाला सिद्धान्त है। "धन्य हैं वे जो दयावंत हैं, क्योंकि उन पर भी दया की जाएगी" (मत्ती 5:7)। आप दूसरों के प्रति जितने ज़्यादा दयावंत होंगे, न्याय के दिन परमेश्वर आप पर भी उतनी ज़्यादा दया करेगा। "लेकिन

जिसने कोई दया नहीं दिखाई, उसका न्याय भी बिना दया के होगा" (याकूब 2:13)।

इसलिए, अगर आप दूसरों को अपने मतलब से और कंजूसी के साथ क्षमा करेंगे, तो परमेश्वर भी आपको उसी तरह क्षमा करेगा। लेकिन अगर आप उन्हें एक प्रेम और क्षमा से भरी नज़र से देखते हैं जिन्होंने आपको हानि पहुँचाई है, तो परमेश्वर आपके साथ भी बिलकुल वही व्यवहार करेगा जो आपने दूसरों के साथ किया है।

सम्बंधों को सही करनाः

यीशु ने कहा कि जब तुम अपनी भेंट वेदी के पास लाओ, जब तुम परमेश्वर से प्रार्थना करने के लिए आओ, या दान-पात्र में दान डालने के लिए आओ, और अगर तुम्हें वहाँ याद आए कि तुमने अपने भाई को चोट पहुँचाई है, तो "तू पहले अपने भाई के साथ मेल-मिलाप कर ले और फिर आकर वेदी पर अपनी भेंट चढ़ा" (मत्ती 5:22-24)। वर्ना परमेश्वर आपकी भेंट या प्रार्थना स्वीकार नहीं करेगा।

पुरानी वाचा का मानक मापदण्ड यह थाः "तू अपने पड़ौसी से बैर न रखना" (लैव्य. 19:18)। इसका पालन करना आसान था।

लेकिन नई वाचा का मानक मापदण्ड इससे ऊँचा है। "अगर तेरे भाई को तुझसे कोई शिकायत है, तो जाकर उस शिकायत को दूर कर।" हाँ, यह सच है कि हमेशा ऐसे भाई मौजूद रहेंगे जिन्हें हमसे तब भी कुछ-न-कुछ शिकायत रहेगी जब हमने कोई ग़लती भी नहीं की होगी। यीशु और उसके शिष्यों के अनेक शत्रु थे क्योंकि वे सत्य के लिए खड़े थे। लेकिन यहाँ, इस संदर्भ में, यीशु एक ऐसे भाई की बात कर रहा है जिसे हमसे इसलिए शिकायत है क्योंकि हमने उससे क्रोधित होकर बात की है (मत्ती 5:22)। वह एक ऐसी शिकायत है जो एक ऐसे पापमय काम का नतीजा है जो

हमने किया है। ऐसे मामले में, हमें अपने पाप का अंगीकार करते हुए उसके पास जाना चाहिए और उससे क्षमा-याचना करनी चाहिए। सिर्फ तभी हम परमेश्वर के पास अपनी भेंट ला सकते हैं।

अगर हम परमेश्वर के पास जाकर यह कहें, "प्रभु, मैं अपने जीवन में नई वाचा के सामर्थ्य की भरपूरी चाहता हूँ," तो प्रभु कहेगा, "जब मैं तुझे नई वाचा की सामर्थ्य दूँगा, तो वह उसके साथ नई वाचा की ज़िम्मेदारियाँ भी लाएगा।"

अनेक मसीही नई वाचा की सामर्थ्य का आनन्द नहीं पाते, क्योंकि वे अभी तक पुरानी वाचा की ज़िम्मेदारियों के साथ जीवन बिता रहे हैं। वे सामर्थ्यहीन रहते हैं क्योंकि वे किसी दूसरे के पास जाकर क्षमा माँगने के लिए तैयार नहीं हैं।

दयावंत होनाः

हम सभी शारीरिक हैं और शारीरिक लोगों के बीच में रहते हैं। इसलिए जाने-अनजाने हम लगातर एक-दूसरे को चोट पहुँचाते ही रहते हैं। सिर्फ स्वर्ग ही एक ऐसी जगह है जहाँ हमें किसी के द्वारा कभी कोई चोट नहीं लग सकती। इसलिए जब तक हम इस पृथ्वी पर हैं, तब तक हमें एक-दूसरे को क्षमा करते रहना है। ग़लती करना मानवीय बात है; क्षमा करना ईश्वरीय बात है।

नर्क का एक लक्षण यह है कि वहाँ कोई दया नहीं होगी। और जिस अनुपात में आपके हृदय में दूसरों के प्रति दया की कमी है, उसी अनुपात में आपके हृदय में नर्क बसा हुआ है। अगर आप किसी को क्षमा करने के लिए तैयार नहीं हैं, तो आपके अन्दर थोड़ा सा नर्क मौजूद है। आपके सारे धार्मिक कामों की वजह से आप दूसरे लोगों की नज़र में बहुत पुण्य व्यक्ति हो सकते हैं। लेकिन हर समय आपके अन्दर थोड़ा सा नर्क मौजूद है। आप ऐसी

दशा में स्वर्ग में नहीं जा सकते; क्योंकि आप स्वर्ग में नर्क नहीं ले जा सकते। पृथ्वी छोड़ने से पहले आपको उसे छोड़ना पड़ेगा।

इस वजह से ही प्रभु ने हमें यह प्रार्थना करनी सिखाई, "जैसे हम अपने अपराधियों को क्षमा करते हैं, ठीक वैसे ही तू भी हमें क्षमा कर।"

जब हम दूसरों को क्षमा नहीं करते, तो इससे हमारी देह प्रभावित होती हैं। परमेश्वर के नियम तोड़ने से अक्सर शारीरिक बीमारी आती हैं।

अगर आपको किसी से अपने हृदय में कुछ शिकायत है, या आपको किसी से ईर्ष्या है, और इस तरह अगर आप परमेश्वर के प्रेम के विधान का उल्लंघन करते हैं, तो इसका प्रभाव आपकी देह पर पड़ना शुरू हो जाएगा। आज ऐसे मसीही हैं जिन्हें गठिया, माइग्रेन (आधे सिर का दर्द), सर्दी-ज़ुकाम, दमा, आदि रोग हैं - ऐसे रोग जिनका कोई इलाज नहीं है - और ये सिर्फ इसलिए हैं क्योंकि उनके अन्दर दूसरों के लिए कुछ शिकायत भरी है। वे कितनी भी दवा करें, लेकिन वे तब तक चंगे नहीं होंगे जब तक वे क्षमा करना नहीं सीखेंगे। ऐसी बीमारियों का मूल तात्विक नहीं है; वह शरीर में नहीं है। इसकी जड़ उनके जीव में है।

अगर आपने अपने भाई या बहन को क्षमा नहीं किया है, तो परमेश्वर आपकी प्रार्थना नहीं सुनेगा। बाइबल भजन 66:18 में कहती हैः "अगर मैं अपने मन में अधर्म को संजाए रखता, तो प्रभु मेरी न सुनता।" सिर्फ यह नहीं कि वह प्रार्थना का जवाब नहीं देता, बल्कि वह प्रार्थना को सुनता भी नहीं है।

हम अपने आपको धोखा न दें। सच्ची क्षमा टूटेपन और पाप के अंगीकार के बाद ही आती है, और अगर परमेश्वर के साथ हमारे सम्बंध को सही होना है, इसमें हमें अपने शरीर को उसके सड़े हुए

रूप में जानना, नुक़सान की भरपाई करने के लिए तैयार रहना, और जहाँ ज़रूरी हो वहाँ किसी से भी क्षमा माँगना शामिल है।

अंत में, यह याद रखें कि प्रार्थना यह है, "हमारे अपराधों को क्षमा कर।" हम यह चाहते हैं कि हमारे भाई भी क्षमा पाएं। कभी-कभी हममें यह एक छुपी हुई अपेक्षा रहती है कि एक भाई ने हमारे साथ जो व्यवहार किया है, उसके लिए परमेश्वर उसका न्याय करे। ऐसा मनोभाव शैतानी है - क्योंकि सिर्फ शैतान ही है जो यह चाहता है कि परमेश्वर लोगों को दण्ड दे।

यीशु ने कहा, "अगर मैंने तुम्हारे पाँव धोए हैं, तो तुम्हें भी एक दूसरे के पाँव धो देने चाहिए" (यूहन्ना 13:14)। इसका अर्थ है कि जब आप अपने भाई के पाँव में मिट्टी लगी देखें (आत्मिक रीति से), तो आपके अन्दर यह लालसा होनी चाहिए वे भी शुद्ध हो जाएं।

फ्हमारे अपराध क्षमा कर" का अर्थ है "पिता, मुझे इससे संतोष नहीं होगा कि सिर्फ मेरे ही पाप क्षमा हों। मेरे आसपास मेरे और भी भाई व बहनें हैं। मैं चाहता हूँ कि तू उनके पापों को भी क्षमा करे। आमीन।"

अध्याय - 8

बुराई से छुटकारा

“हमें परीक्षा में न डाल, बल्कि बुराई से बचा।”

इस निवेदन के दो पहलू हैं - एक, परमेश्वर से हमारी रक्षा करने के लिए कहना, और दूसरा, उससे हमें छुटकारा देने के लिए कहना। पिछले निवेदन में पाप के दोष से मुक्त किए जाने के लिए प्रार्थना करने के बाद, अब हम पाप की शक्ति से मुक्त किए जाने के लिए प्रार्थना करते हैं। अगर हम सिर्फ क्षमा चाहते हैं और छुटकारा नहीं चाहते, तो इसका अर्थ होगा कि हमारा मन-फिराव सही नहीं था। पापों की क्षमा को ऐसा द्वार होना है जो हमें एक पवित्र जीवन जीने की तरफ ले जाए, यह नहीं कि वह हमें परमेश्वर की कृपा का ग़लत फायदा उठाने वाला बनाए।

प्रसन्नता और सामर्थ्य:

सभी मसीही प्रसन्न रहना चाहते हैं। लेकिन यीशु ने कहा, “धन्य हैं वे जिनके हृदय पवित्र हैं” (मत्ती 5:8)। “धन्य” शब्द का अर्थ प्रसन्नता भी होता है। इसलिए यीशु के कहने का अर्थ असल में यह था कि सच्ची प्रसन्नता हृदय की पवित्रता में से आती है। अगर स्वर्ग असीम प्रसन्नता की जगह है, तो उसका कारण यही है कि वहाँ पूरी पवित्रता भी है।

पवित्रता के बिना प्रसन्नता एक नकली बात है। हमें असल में यह प्रार्थना करनी चाहिए कि अगर हम अपवित्र हैं तो परमेश्वर हमें अप्रसन्न कर दे। वर्ना ऐसा होगा कि हम अपनी आत्मिक दशा के बारे में भ्रमित हो जाएंगे।

अनेक मसीही उनके जीवन में सामर्थ्य पाने के लिए परमेश्वर की खोज करते हैं। लेकिन इस बात को पवित्रता की खोज की बात से, और उसी अनुपात में, अलग नहीं किया जा सकता। वर्ना यह ख़तरनाक हो सकता है। परमेश्वर के लिए एक अपवित्र व्यक्ति के हाथ में सामर्थ्य देना, एक शल्य-चिकित्सक (सर्जन) के हाथ में कीटाणुयक्त औज़ार से भी ज़्यादा ख़तरनाक हो सकता है। निश्चय ही, इससे जीवन की बजाय मौत के लिए ही रास्ता बनेगा।

इस वजह से ही परमेश्वर अपनी सामर्थ्य ज़्यादातर मसीहियों को नहीं दे पाता है। वह सामर्थ्य उन्हीं को बर्बाद और नाश कर देगी। हमें परमेश्वर का धन्यवाद करने की ज़रूरत है कि जितने अलौकिक दान-वरदान हमने उससे माँगे थे, उसने हमें वे सब नहीं दिए। अनेक विश्वासी उन्हें दि गए दान-वरदानों की वजह से नाश हो गए हैं, क्योंकि वे उनका सही उपयोग करने के लिए वैसे नम्र व दीन और पवित्र नहीं हुए जैसा होने की उन्हें ज़रूरत थी। हम जिस नाप में सामर्थ्य पाना चाहते हैं, हममें उसी नाप के अनुसार पवित्र होने की भी अभिलाषा होनी चाहिए। हम सिर्फ तभी सुरक्षित रह सकते हैं।

परमेश्वर शैतान को कैसे इस्तेमाल करता हैः

सच्ची पवित्रता एक संघर्ष का परिणाम होती है। यह कुर्सी पर बैठे रहने वाले मसीहियों के लिए नहीं है जो आराम से बैठे रहना चाहते हैं और फ्फूलों की सेज पर स्वर्ग में उठा लिए जाना चाहते हैं।" जब हम अपनी लालसाओं और शैतान के खिलाफ़ लड़ते हैं, सिर्फ तभी हम पवित्र बनते हैं।

तब हम यह सवाल कर सकते हैं, "अगर शैतान हमारी पवित्रता में ऐसी रुकावट है, तो परमेश्वर उसे मिटा क्यों नहीं देता?"

इसका जवाब यह है कि एक हद तक हमारी आत्मिक उन्नति के लिए शैतान भी उतना ही ज़रूरी है जितना सोने को शुद्ध करने के लिए एक भट्ठी ज़रूरी होती है। हमारी माँसपेशियाँ सिर्फ ज़ोर लगाने के बाद ही मज़बूत होती हैं। वर्ना हम मोटे और ढीले हो जाएंगे। आत्मिक परिमण्डल में भी बिलकुल ऐसा ही है। अगर हमें आत्मिक तौर पर मज़बूत होना हैं, तो हमारे सामने विरोध का होना ज़रूरी है। परमेश्वर इस वजह से ही शैतान को हमारी परीक्षा करने देता है।

ऐसा व्यक्ति जिसने उसके जीवन में ज़्यादा संघर्ष नहीं किया है, आत्मिक तौर पर कमज़ोर, ढीला और कुपोषित होगा। जो कुछ परमेश्वर उससे चाहता है, वह उन सब कामों को करने योग्य नहीं होगा। लेकिन वह जो सफलता के साथ पीड़ाओं और परीक्षाओं में से गुज़रा है, वह परमेश्वर की इच्छा पूरी करने के लिए सशक्त और सक्षम होगा।

परमेश्वर ने शैतान को क्यों नाश नहीं किया है इसका एक कारण तो यही है।

परमेश्वर ने अदन की वाटिका में एक वर्जित पेड़ क्यों रखा था? कुछ लोग ऐसा सोच सकते हैं कि अगर परमेश्वर ने वह पेड़ वहाँ न रखा होता तो आदम कभी पाप न करता। लेकिन आदम के पवित्र बनने के लिए वह पेड़ ज़रूरी था। परीक्षा के बिना मनुष्य के लिए कोई पवित्रता नहीं हो सकती। परमेश्वर ने इसलिए शैतान को अदन में प्रवेश करने की अनुमति दी थी।

आदम भोला-भाला था, लेकिन भोला होना पवित्र होना नहीं होता। आदम उसके जीवन-भर भोला बना रहता और अगर उसे परखा न जाता तो वह कभी पवित्र नहीं हो पाता। लेकिन आदम के पवित्र होने के लिए वह पेड़ ज़रूरी था। भोलापन एक निष्पक्ष दशा होती

है, और उस निष्पक्षता की दशा में से एक सकारात्मक रूप में पवित्र होने के लिए, आदम को एक चुनाव करने की ज़रूरत थी। उसे परीक्षा को "नहीं" और परमेश्वर को फ्हाँ" कहना था। वह सिर्फ तभी पवित्र हो सकता था। इसलिए उसे परीक्षा में डाला जाना ज़रूरी था। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि उसने परमेश्वर को "नहीं" कह दिया और इस तरह वह पापी बन गया।

परीक्षा/प्रलोभन और पापः

यीशु भी सब बातों में हमारी ही तरह परखा गया था (इब्रा. 4:15)। लेकिन उसमें और आदम में यह फर्क़ था कि उसने परमेश्वर को हमेशा "हाँ" कहा था। एक सिद्ध पुरुष बनने के लिए, जैसा परमेश्वर सभी मनुष्यों को बनाना चाहता था, यीशु को उन बातों के द्वारा आज्ञापालन करना सीखना पड़ा जिनमें उसने पीड़ा सही। उसका परीक्षा/प्रलोभन से सामना हुआ और वह उन पर प्रबल हुआ, और, इस तरह, "वह सिद्ध ठहराया गया" (इब्रा. 5:8,9)।

इस वजह से ही यीशु ने अपने शिष्यों के लिए यह कहते हुए प्रार्थना की थी, "पिता, मैं यह विनती नहीं करता कि तू उन्हें जगत में से उठा ले, लेकिन यह कि तू उन्हें दुष्टता (बुराई) से बचाए रख" (यूहन्ना 17:15)। यीशु यह जानता था कि अगर उसके शिष्यों को उन पीड़ाओं और परीक्षाओं में से निकाल लिया गया जिनका सामना उन्हें संसार में करना था, तो वे कभी पवित्र नहीं हो सकते थे।

हमें परीक्षा और पाप के बीच में फर्क़ जानने की ज़रूरत है। अगर हम किसी ऐसी बात से प्रलोभित हो जाते हैं जो अचानक ही हमारे सामने आ जाती है, तो वह पाप नहीं है। लेकिन जब हमें प्रलोभित करने वाली वस्तु को हम लगातार देखते रहते हैं, या उसके बारे में सोचते रहते हैं, तब हम पाप करते है। हम प्रलोभित होने से

नहीं बच सकते। लेकिन हम अपनी नज़र और अपने मन को उन बातों की तरफ से ज़रूर फिरा सकते हैं जो हमें प्रलोभित करती हैं। हम अपनी इच्छा का इस्तेमाल किस तरह करते हैं, वही यह तय करता है कि हम पवित्र हैं या पापी हैं।

परमेश्वर प्रलोभित होने के लिए हमें दोषी नहीं ठहराता। लेकिन वह निश्चित रूप में यह चाहता है कि हम उस प्रलोभन का सामना करें। जैसा किसी ने कहा है, "मैं पक्षियों को अपने सिर के ऊपर से जाने से तो नहीं रोक सकता, लेकिन उन्हें अपने सिर में घोंसला बनाने से ज़रूर रोक सकता हूँ।" आप एक प्रलोभन को अपनी तरफ आने से नहीं रोक सकते, लेकिन उसे अपने मन में घर करने से ज़रूर रोक सकते हैं!

परमेश्वर का वचन हमें यह नहीं सिखाता, कि यह साबित करने के लिए कि हम कितने सामर्थी हैं, हम ज़्यादा से ज़्यादा प्रलोभनों का सामना करें। नहीं, हमें परीक्षाओं/प्रलोभनों से दूर भागना है। पौलुस ने तीमुथियुस से कहा कि वह उन बातों से भागे जो उसे प्रलोभित करती हैं (2 तीमु. 2:22)। हमें धन के प्रेम से, चंचल स्त्रियों से, और हरेक उस बात से भागना है जो हमें परमेश्वर से दूर ले जाता है।

परीक्षा के प्रति हमारा मनोभाव यह होना चाहिए, "मुझे अपने आपको इससे जितना हो सके उतना दूर रहना चाहिए।" हमें ऐसे बच्चों की तरह नहीं होना है जो एक ऊँची चट्टान के किनारे तक यह देखने के लिए जाते हैं कि वे गिरते हैं या नहीं, या जो रेलवे प्लेटफॉम के किनारे खड़े होकर यह देखना चाहते है कि वे रेलगाड़ी के झोंके से गिरते हैं या नहीं। कोई भी समझदार माता-पिता अपने बच्चे को ऐसा करने की सलाह नहीं देंगे। हम अपने बच्चों को ऐसे

ख़तरों से दूर रहने के लिए कहते हैं। परमेश्वर भी हमें यही कहता है।

इस निवेदन का अर्थ वास्तव में यही है, "पिता मुझे किसी ऐसी परीक्षा/प्रलोभन में न डाल जिसका सामना करना मेरे लिए मुश्किल हो।" यह पुकार सिर्फ ऐसे व्यक्ति की ही हो सकती है जो यह जानता है कि वह शरीर में कमज़ोर है, और यह समझता है कि वह आसानी से गिर सकता है।

प्रलोभनों का सामना करने के लिए तैयार रहनाः

गतसमनी के बाग़ में यीशु ने पतरस, याकूब और यूहन्ना से कहा, फ्जागते रहो और प्रार्थना करते रहो कि तुम परीक्षा में न पड़ो" (मत्ती 26:41)। यीशु जानता था कि उनके सामने परीक्षा रखी थी, और वह चाहता था कि वे उसका सामना करने के लिए तैयारी करें। लेकिन प्रार्थना करने की बजाए वे सो गए थे। इसका नतीजा यह हुआ, कि जब परीक्षा आई, तो पतरस ने एक सैनिक का कान काटा डाला। वह पाप में गिर गया, क्योंकि उसने जागते हुए प्रार्थना नहीं की थी। लेकिन यीशु का आचरण शुद्ध और प्रेमपूर्ण बना रहा, क्योंकि उसने प्रार्थना की थी।

परमेश्वर हमें पहले ही चेतावनी दे देने में विश्वासयोग्य है। हममें से हरेक ने, कभी-न-कभी, हमारे हृदय में पवित्र-आत्मा की आवाज़ को ज़रूर यह कहते हुए सुना होगा, "अब कुछ समय प्रार्थना में बिता।" क्या आपने उसे परमेश्वर की उस आवाज़ के रूप में जाना था जो आपके सामने रखी किसी परीक्षा के लिए आपको तैयार कर रही थी?

ऐसे समय में आपने क्या किया है? शिष्यों की तरह आप भी उसकी आवाज़ को अनसुना कर सकते हैं। और जब परीक्षा आई, तो आप गिर गए थे। परमेश्वर ने आपको उस परीक्षा का सामना

करने के लिए तैयार करना चाहा था। लेकिन आपने उसकी बात नहीं सुनी थी।

हरेक परीक्षा/प्रलोभन पर जय पाई जा सकती है:

परमेश्वर ने उसके वचन में हमें एक अद्‌भुत प्रतिज्ञा दी है कि हमें कभी ऐसी परीक्षा में नहीं पड़ने देगा जो हमारे सहने से बाहर हो (1 कुरि. 10:13)। दूसरे शब्दों में, वह हमारी तरफ आने वाली हरेक परीक्षा/प्रलोभन को यह देखने के लिए जाँचेगा कि हम उस पर जयवंत हो सकेंगे या नहीं। सिर्फ तभी वह उसे हमारी तरफ आने देगा। एक अच्छा शिक्षक एक दूसरी कक्षा के छात्र को कभी भी नौंवी कक्षा के छात्र का परीक्षा-पत्र नहीं देगा। वह एक छात्र के स्तर के अनुसार ही उसे परीक्षा-पत्र देगा। परमेश्वर भी ऐसा ही करता है।

इस पद की ज्योति में, तब क्या यह समझना सही है कि आपके सामने जो परीक्षा या प्रलोभन आते हैं, वे आपके सहने से कुछ ज़्यादा होते हैं? नहीं। यह स्पष्ट है कि परमेश्वर ऐसा नहीं सोचता। वर्ना वह उसे हमारे पास आने ही नहीं देता। यह सच्चाई कि परमेश्वर ने एक परीक्षा को आपके पास आने की अनुमति दे दी है, इस बात का सबूत है कि आप उस पर जय पाने में सक्षम हैं। इसलिए हमें एक परीक्षा/प्रलोभन को इस तरह देखना चाहिएः "परमेश्वर ने इस परीक्षा को मरे पास आने दिया है। यह इस बात का संकेत है कि परमेश्वर को मुझमें भरोसा है। वह जानता है कि मैं इस पर भी जय पा सकता हूँ। और वह इस पर जय पाने के लिए ज़रूर मुझे अपने आत्मा की सामर्थ्य देगा।" अगर हम हरेक परीक्षा और प्रलोभन को इस तरह से देखने लगेंगे, तो हमारी तरफ आने वाली हरेक परीक्षा पर हम जय पा सकेंगे।

परमेश्वर ने उसकी व्यवस्था को हमारे मनों और हृदयों पर लिख देने की प्रतिज्ञा भी की है (इब्रा. 8:10)। वह अपने पवित्र-आत्मा द्वारा हममें इच्छा करने, और फिर उस इच्छित काम को करने के लिए हममें सक्रिय है (फिलि. 2:13)। इसलिए हमें कभी हारने की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए।

पाप की शक्ति से छुटकाराः

इस प्रार्थना-निवेदन के बाद, कि "हमें परीक्षा में न डाल" (जो हमारे लिए कुछ ज़्यादा ही शक्तिशाली है), यह निवेदन है, फ्हमें बुराई से बचा।"

जिस यूनानी शब्द का अनुवाद "बचा" किया गया है, उसका भावानुवाद "अपनी तरफ खींच" भी हो सकता है। अब यह प्रार्थना इस तरह हो सकती है "हमें बुराई से अपनी तरफ खींच ले।" परमेश्वर और बुराई दोनों अलग दिशाओं में खींच रहे हैं। और हम यह कह रहे हैं, "पिता, मैं अपने शरीर में बुराई की तरफ खींचा जाना महसूस करता हूँ। लेकिन मुझे वहाँ न जाने दे। मैं उसके आगे टूटना नहीं चाहता हूँ। कृपा कर और मुझे अपनी तरफ खींच ले।" परमेश्वर की तरफ खींचे जाने की लालसा और भूख, पाप पर जय पाने वाला जीवन पाने की एक बुनियादी ज़रूरत है।

रोमियों 6:14 की प्रतिज्ञा, ("पाप तुम पर प्रभुता न करने पाएगा") का अनेक मसीहियों के जीवन में पूरा न होने का एक कारण यह है कि उनके हृदय की गहराइयों में, उनमें पाप से मुक्त होने की पर्याप्त भूख नहीं है। वे यह कहते हुए पुकार नहीं उठते, "हे परमेश्वर, मुझे किसी भी क़ीमत पर पाप से छुटकारा दिला दे।" उनमें इसकी प्यास नहीं है। अगर वे एक गंभीर रूप में बीमार होते, तो ज़ोर से पुकार उठते। लेकिन वे यह नहीं समझते कि पाप

करना बीमार होने जैसा ही बुरा है! इसलिए इसमें कोई हैरानी की बात नहीं है कि वे एक हारा हुआ जीवन जीते हैं।

निर्गमन 2:23-25 कहता है, "इस्राएली लोग बन्धुवाई के कारण आहें भर-भर कर पुकार उठे, और जो दुहाई उन्होंने बंधुवाई के कारण दी, वह परमेश्वर तक पहुँची। और परमेश्वर ने उनका कराहना सुना।" तब ही परमेश्वर हमारी भी सुधि लेगा - जब हम छुटकारा पाने के लिए हताश होकर पुकारेंगे। परमेश्वर कहता है, "तुम मुझे ढूंढोगे और पाओगे, क्योंकि तुम मुझे पूरे हृदय से खोजोगे" (यिर्म. 29:13)।

पवित्र-शास्त्र में यह एक सिद्धान्त है कि इससे पहले कि आप परमेश्वर से कुछ मूल्यवान वस्तु पाएं, आपको उसके लिए भूखा और प्यासा होना चाहिए। उसके बाद ही हम उस वस्तु की सही तरह से सराहना करना सीखते हैं। और इसलिए परमेश्वर यह इंतज़ार करता है कि पहले हम उसके लिए भूखे और प्यासे हा; और फिर परमेश्वर हमें वह दे देता है जिसकी हम वास्तव में लालसा करते हैं।

मसीही जीवन शैतान के खिलाफ़ लड़ाई का जीवन है। और इस लड़ाई में शैतान का एक साथी हमारे अन्दर ही मौजूद है - हमारा शरीर। और क्योंकि हमारा शरीर क्योंकि शैतान की तरफ है, इसलिए वह हमें शैतान से एक प्रभावी रूप में लड़ने से रोकने की हर सम्भव कोशिश करेगा। यह बात कभी न भूलें। इसलिए, अगर हमें शैतान पर जय पानी है, तो हमें अपने शरीर से पूरी तरह छुटकारा पाना होगा।

सारी बुराई से छुटकाराः

यह प्रार्थना करने वाले बहुत से विश्वासी हैं, "हे परमेश्वर, मुझे उस सारी बुराई से बचा ले जो मेरे खिलाफ़ शैतान और बाक़ी सब लोग

कर रहे हैं।" लेकिन इस दौरान, वे शरीर (शत्रु के साथी) को वह सब कुछ दे देने द्वारा जो वह चाहता है, पोषित करते रहते हैं। तब परमेश्वर उन्हें सारी बुराई से छुटकारा नहीं दे सकता।

पहले हमारी शारीरिक लालसाओं से छुटकारा पाने की हममें अभिलाषा होनी चाहिए। फिर शैतान पर जय पाना हमारे लिए एक आसान बात बन जाएगी। तब हम यह पाएंगे कि मनुष्यों और दुष्टात्माओं की तरफ से आने वाली कोई भी बुराई फिर हमें छू भी न सकेगी।

रोमियों 7:14-25 में, शरीर की लालसाओं से पूरा छुटकारा पाने के लिए हम पौलुस की अभिलाषा देखते हैं। इसके बाद, रोमियों 8:28 में हम यह पढ़ते हैं, फ्परमेश्वर सब बातों द्वारा हमारे लिए भलाई उत्पन्न करता है।" इसमें क्रम पर ध्यान दें। पहली बात में से ही दूसरी बात निकली है। रोमियों 8:28 हमारे जीवन में तभी सच हो सकता है जब हम में पहले शत्रु के साथी - शरीर से छुटकारा पाने की लालसा होगी।

रोमियों 8:28 कितनी अद्भुत प्रतिज्ञा है, कि हमारे जीवनों में कभी कोई बुराई नहीं आ सकती। क्या आपका वास्तव में यह भरोसा है कि सब बातें - सिर्फ कुछ बातें, ज़्यादा बातें, अधिकांश बातें, या 99: बातें नहीं, बल्कि सब बातें - मिलकर आपके लिए भलाई को ही उत्पन्न करेंगी?

अगर आप इन "बातों" को अलग अलग देखेंगे, तो वे आपको बहुत भयानक नज़र आ सकती हैं। लेकिन अगर आप परमेश्वर से प्रेम करते हैं और उसके उद्देश्य पूरे करने के लिए बुलाए गए हैं, तो वे सब बातें मिलकर आपके लिए भलाई ही उत्पन्न करेंगी। और उसका उद्देश्य यह है कि आप पूरी तरह पाप से छुटकारा पाएं और मसीह की समानता में बदल जाएं, जैसा कि फिर अगले ही

पद में लिखा है (रोमि. 8:29)। इसलिए, अगर आप में पाप से छुटकारा पाने की लालसा है, तो परमेश्वर आपसे प्रतिज्ञा करता है कि वह आपके साथ होने वाली हरेक बात को मिलाकर आपकी भलाई के लिए काम करने वाला बना देगा। हालेलुय्याह!

युसुफ के बारे में सोचें। उसने एक ईश्वरीय जीवन जीना चाहा था, और जितनी ज्योति उसके पास थी, उसके अनुसार उसने बुराई से बचना चाहा था। उसने परमेश्वर को प्रसन्न करना चाहा और परमेश्वर ने उसे आशिष दी। लेकिन दूसरे लोगों ने उसके साथ कैसा व्यवहार किया था? उसके दस भाई उससे इतनी ईर्ष्या करते थे कि उन्होंने उसे बेचकर मिस्र में भेज दिया। सतही तौर पर देखने से वह एक बहुत दुष्टता भरा काम था। लेकिन अंत में हम देखते हैं कि वह परमेश्वर की योजना का एक हिस्सा था कि वह युसुफ को मिस्र का दूसरा शासक बना दे। जो बुराई उसके भाइयों ने उसके साथ की थी, अंततः उसने सब बातों के साथ मिलकर उसके लिए भलाई ही पैदा की।

जब वह मिस्र पहुँचा, तो वह पोतीपर के घर में दास होने के लिए बेच दिया गया। तब पोतीपर की पत्नी ने उसे प्रलोभित किया, लेकिन वह उसके सामने नहीं झुका। वह प्रलोभन की जगह से भाग गया। उस स्त्री ने उस पर झूठा दोष लगाया और उसे कारागार में डाल दिया गया। इस बात में भी बड़ी बुराई नज़र आती है। लेकिन परमेश्वर ने ही युसुफ का कारागार से सिंहासन तक का रास्ता तय किया था - क्योंकि उसी कारागार में उसे फिरौन का पियाऊ मिला था, और बाद में उसके द्वारा उसका फिरौन से परिचय हुआ था (उत्पत्ति 39-41)।

युसुफ के साथ लोगों ने ईर्ष्या और घृणा की वजह से जो बुराई की थी, परमेश्वर ने अपनी सर्वसत्ता में उन सब बातों को मिलाकर युसुफ के लिए उसकी योजना को पूरा किया था।

हमारे लिए भी यही हो सकता है - सब बातें मिलकर हमारे लिए भी परमेश्वर की बनाई हुई योजना को पूरा कर सकती हैं - हमें मसीह की समानता में बदल सकती हैं। लेकिन यह हमारा विश्वास होना चाहिए - क्योंकि हमारे लिए परमेश्वर की प्रतिज्ञाएं हमारे विश्वास के अनुसार ही पूरी होती हैं।

ऐस्तर की पुस्तक में, हम हामान के बारे में पढ़ते हैं जिसने मोर्दकै के लिए एक फाँसी का खम्भा बनवाया था। लेकिन अंत में, ख़ुद हामान को ही उस फाँसी के खम्भे पर लटकाया गया था (ऐस्तर 7:10)। परमेश्वर ने उसके लोगों के शत्रुओं की बाज़ी उनके ही सिर पर उलट दी। परमेश्वर शैतान के साथ भी ऐसा ही करता है। वह शैतान की बाज़ी को उसके सिर पर इस तरह उलट देता है कि फिर फाँसी के खम्भे पर हमारे लटकने की बजाए शैतान को ही उस पर लटकना पड़ता है। हालेलुय्याह!

हमें एक-दूसरे की ज़रूरत हैः

इस प्रार्थना में एक और बात पर ध्यान दें, कि हमारी प्रार्थना यह नहीं है, "मुझे बचा", बल्कि यह कि "हमें बचा।" वह यह है, "मेरे भाई को मुझे बुराई से बचा। मेरी बहन को और मुझे बुराई से बचा। पिता, हमें बचा।"

हमें एक-दूसरे की ज़रूरत है। बुराई से छुटकारा पाने के लिए हमें एक-दूसरे की सहभागिता की ज़रूरत है। "एक से दो अच्छे हैं... क्योंकि अगर उनमें से एक गिरे तो दूसरा अपने साथी को उठाएगा। लेकिन उस पर हाय, कि जब वह अकेला गिरे तो उसको उठाने वाला कोई दूसरा न हो" (सभो. 4:9-10)।

शैतान इस वजह से ही विश्वासियों को अलग करना और उनमें फूट डालना चाहता है। इस वजह से ही वह एक पत्नी और पति को अलग करना चाहता है। शैतान ही है जो छोटी-छोटी ग़लतफहमियाँ पैदा करता है। वह एक व्यक्ति को एक बात पर भरोसा करने वाला और दूसरे व्यक्ति को दूसरी बात पर भरोसा करने वाला बना देता है, और कोई गंभीर बात हुए बिना ही, शैतान उन्हें अलग कर देता है।

शैतान यह जानता है कि विश्वासियों को एक-दूसरे से अलग कर देने के बाद, उसके लिए उन्हें एक एक करके गिराना आसान हो जाता है। जब तक वे जुड़े रहते हैं, तब तक उसके लिए ऐसा कर पाना सम्भव नहीं होता। इसलिए वह उन्हें विभाजित कर देता है। और एक बार जब वह हरेक विश्वासी को ऐसा बनाने में सफल हो जाता है कि वह दूसरे की परवाह किए बिना स्वयं के लिए जीने वाला बन जाए, तब उन्हें परमेश्वर के लिए प्रभावहीन हो जाने में ज़्यादा समय नहीं लगता।

हमें यह समझने की ज़रूरत है कि हमारा एक ही शत्रु है, और वह शैतान है। इसलिए हम एक-दूसरे के साथ न लड़ें। हम एक-दूसरे के लिए प्रार्थना करें।

एक गिरे हुए भाई की चिंता करनाः

"हमें बचा" का अर्थ यह भी है कि जब मैं अपने एक भाई को पाप में गिरता हुआ देखूँ, तो मैं उसमें आनन्द न मनाऊँ। इसके विपरीत, मैं शोकित होकर उसके लिए प्रार्थना करता हूँ और उसे पुनःस्थापित करना चाहता हूँ।

दयालु सामरी के दृष्टान्त में, याजक के और सामरी के मनोभाव में एक स्पष्ट अन्तर था। याजक ने गिरे हुए व्यक्ति की तरफ देखकर शायद अपने मन में यह कहा होगा, "परमेश्वर का धन्यवाद हो कि मैं उसकी तरह नहीं गिरा हूँ," और यह कहते हुए वह आगे निकल गया (लूका 10:30-37)। कुछ विश्वासी जब एक दूसरे विश्वासी को गिरते हुए देखते हैं, तो उनका भी यही मनोभाव होता है। वे दूसरों से कहते हैं, "देखो, वह कैसे गिरा है," जिसमें छुपे तौर पर वे यह इशारा कर रहे होते हैं, "देखो, मैं कैसे नहीं गिरा हूँ!"

लेकिन दयालु सामरी ने क्या किया? उसने अपनी जीत के लिए परमेश्वर को धन्यवाद नहीं दिया। उसने झुक कर उस गिरे हुए व्यक्ति को उठाया, और उसे ऐसी जगह पर पहुँचाया जहाँ वह चंगा हो सकता था। और यीशु हमसे कहता है, "तुम भी जाकर वैसा ही करो" (लूका 10:37)।

जब आपको अपने किसी भाई में कोई कमज़ोरी नज़र आती है, या शायद जिसे आप किसी क्षेत्र में गिरा हुआ देखते हैं, तब क्या आपका भी ऐसा मनोभाव होता है? क्या आप उसे प्रार्थना में ऊँचा उठाते हैं, और उसकी चंगाई के लिए उसे यीशु के पास ले जाते हैं? इस बात के द्वारा आप भी काफी अच्छी तरह परख लिए जाएंगे कि आप परमेश्वर में केन्द्रित हैं या नहीं।

दूसरों से ज़्यादा आत्मिक नज़र आने की स्वकेन्द्रित लालसा की वजह से ही ऐसा होता है कि हमें दूसरे के पाप में गिरने से कोई फर्क़ नहीं पड़ता। एक दुष्ट शैतानी आत्मा ही हमें प्रेरित करती है कि हम अपने आपको दूसरों से श्रेष्ठ दिखाएं। जब हम यह प्रार्थना करते हैं, "पिता, हमें बुराई से बचा," तो उसमें यह लालसा नहीं हो सकती कि हम अपने आपको दूसरों से ज़्यादा आत्मिक दिखाएं।

हम मसीह में एक देह हैं। अगर मेरे बाएं हाथ में चोट लगती है तो मेरा दायाँ हाथ तुरन्त उसकी चंगाई के लिए काम करने लगता है। और सिर्फ मेरा दायाँ हाथ ही नहीं, बल्कि मेरी पूरी शारीरिक-रचना सचेत होकर उस चोट की चंगाई के लिए काम करने लगती है। मसीह की देह में भी ऐसा ही होना चाहिए।

सबसे बड़ी दो आज्ञाएंः

मूसा सिनै पर्वत पर से अपने हाथों में पत्थर की दो पट्टियाँ लेकर नीचे उतरा था। एक पर वे पहली चार आज्ञाएं लिखी थीं जो मनुष्य के परमेश्वर के साथ सम्बंध के बारे में थीं। दूसरी पर अन्य छः आज्ञाएं थीं जो मनुष्य के उसके साथी मनुष्यों के साथ सम्बंध के बारे में थीं।

प्रभु यीशु ने कहा कि इन दोनों पट्टियों की आज्ञाओं को दो आज्ञाओं में समाहित किया जा सकता है। पहली, "तू प्रभु अपने परमेश्वर से अपने सारे हृदय और अपने सारे जीव और अपनी सारी बुद्धि से प्रेम कर," और दूसरी यह कि "तू अपने पड़ौसी से अपने समान प्रेम कर" (मत्ती 22:37-39)।

जो प्रार्थना यीशु ने सिखाई, उसमें भी उसने इन दोनों आज्ञाओं पर ज़ोर दिया। उसके पहले तीन निवेदन पहली आज्ञा से जुड़े हैं, और अगले तीन निवेदन दूसरी आज्ञा से जुड़े हैं, जिसके विस्तार को यीशु ने उस नई आज्ञा द्वारा और बढ़ा दिया जो उसने अपने शिष्यों को यह कहते हुए दी थी, "जैसा प्रेम मैंने तुमसे किया है, तुम भी एक-दूसरे से वैसा ही प्रेम रखो" (यूहन्ना 13:14)।

यीशु का एक सच्चा शिष्य उसके सचेत और अचेत अस्तित्व में, सिद्धता के साथ परमेश्वर में केन्द्रित होना चाहता है - वह अपनी हरेक अभिलाषा को परमेश्वर के साथ एक सिद्ध तालमेल में ले

आना चाहता है, और उसके जीवन के लिए परमेश्वर की जो इच्छा है, उससे बाहर जाकर उसकी कोई अभिलाषा, महत्वकांक्षा और भावना नहीं होती। इसके साथ ही वह अपने भाइयों को भी वैसे ही सिद्ध रूप में प्रेम करना चाहता है जैसा यीशु ने उससे किया है। लेकिन उसे हमेशा यह अहसास रहता है कि इन दोनों ही दिशाओं में उसका मनोभाव जैसा होना चाहिए वैसा सिद्ध नहीं है। लेकिन वह उस लक्ष्य की तरफ बढ़ता जाता है, और वहाँ तक पहुँचने के लिए वह हर क़ीमत चुकाने के लिए तैयार रहता है।

अपने भाइयों से प्रेम करने का अर्थ उनमें दिलचस्पी रखना है। हम जगत में हरेक व्यक्ति में दिलचस्पी नहीं रख सकते। यह क्षमता सिर्फ परमेश्वर में है। लेकिन हमारी क्षमता के अनुसार, हमारे अन्दर अपने साथी-विश्वासियों में दिलचस्पी होनी चाहिए; और यह क्षमता लगातार बढ़ती रहनी चाहिए।

लेकिन हम इस तरह से अपनी शुरूआत नहीं करते। इसमें पहला क़दम अपने परिवार के सदस्यों से प्रेम करना है, जैसे यीशु ने हमसे किया है। लेकिन हमें वही नहीं रुकना है। आगे बढ़ते हुए, फिर हमें परमेश्वर के परिवार में अपने भाइयों व बहनों से प्रेम करना, वैसा ही प्रेम जैसा यीशु ने हमसे किया है।

सिद्धता एक लक्ष्य है जिसकी तरफ हमें बढ़ना है। लेकिन उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए हममें एक दृढ़ संकल्प होना चाहिए। पौलुस इसी दिशा में बढ़ रहा था जब उसने यह कहा, "मैं एक काम करता हूँ, जो बातें पीछे रह गई हैं उन्हें भूलकर आगे की तरफ बढ़ता हुआ, लक्ष्य की ओर दौड़ा जाता हूँ कि वह ईनाम पाऊँ जिसके लिए परमेश्वर ने मुझे मसीह यीशु में मुझे ऊपर बुलाया है" (फिलि. 3:13,14)।

ऊपर आने की परमेश्वर की बुलाहट पूरी तरह से परमेश्वर में केन्द्रित हो जाना, सबसे बढ़कर परमेश्वर से प्रेम करना, अपने साथी-विश्वासियों से वैसा ही प्रेम करना जैसा यीशु ने हमसे किया, और अपने पड़ौसी से अपने समान प्रेम करना है।

अध्याय 9

सारी महिमा परमेश्वर को मिले

“क्योंकि राज्य, पराक्रम और महिमा सदा तेरे ही हैं। आमीन।"

यह प्रार्थना परमेश्वर से शुरू होती है, ”तेरा नाम पवित्र माना जाए, तेरा राज्य आए, तेरी इच्छा पूरी हो,” और इसका अंत भी परमेश्वर से होता है, “क्योंकि राज्य, पराक्रम और महिमा तेरे ही हैं।”

परमेश्वर ने अपने वचन में कहा है, “अल्फा और ओमेगा मैं हूँ” (प्रका. 1:8)।

यीशु के हरेक शिष्य में सबसे पहला विचार और सबसे अंतिम विचार परमेश्वर ही होना चाहिए। परमेश्वर ही हमारे जीवन का केन्द्र और उसकी धुरि होना चाहिए।

जो सीमा उसने हमारे लिए तय की है, हम उसमें ही रहते और चलते-फिरते हैं। और उसी परिधि में वह हमेशा हमें मिलता रहेगा (प्रेरितों. 17:26,27)।

इस प्रार्थना के अंत के तीनों कथनों की तुलना उन तीन अंतिम परीक्षाओं से किया जा सकता है जिनका सामना हमारे प्रभु ने जंगल में किया था।

राज्य परमेश्वर का हैः

पहला कथन यही, “राज्य तेरा है।”

इसकी तुलना उस तीसरी परीक्षा से करें जिसमें शैतान ने यीशु को संसार के सारे राज्य दिखाकर कहा था, “मेरे आगे झुक जा, और ये ले ले।” लेकिन यीशु ने कहा, “नहीं। राज्य पिता का है। सिर्फ

वही राजा है।" इस तरह, यीशु ने शैतान के हाथ से राज्य लेने से इनकार कर दिया।

इस वजह से ही यीशु ने अपने देह में रहने के दिनों में कभी राजा बनना नहीं चाहा था। जब लोगों ने उसे राजा बनाना चाहा था, तो वह उनके बीच में से निकल गया था (यूहन्ना 6:15)। वह सब मनुष्यों के सेवक के रूप में रहा था।

इससे हम यह सीखते हैं कि हमें भी दूसरों के ऊपर राज करने की खोज में नहीं रहना चाहिए। वह मनुष्य जो एक अगुवा बनना चाहता है, या यह चाहता है कि वह एक मसीही अगुवे के रूप में जाना जाए, जो किसी-न-किसी तरह अपने साथी-विश्वासियों से ऊँचा होना चाहता है, यह प्रार्थना करने योग्य नहीं है, "पिता, सिर्फ तू ही राजा होने के योग्य है।" परमेश्वर की कलीसिया में, सिर्फ परमेश्वर को ही राजा होना है। हमें राजा नहीं सेवक होना है।

पराक्रम परमेश्वर का हैः

अगला कथन है, "पराक्रम तेरा है।"

पराक्रम/सामर्थ्य परमेश्वर का है (भजन. 62:11)। वह हमें उसकी सामर्थ्य एक अस्थाई ट्टण के रूप में इसलिए देता है कि हम उसे उसकी महिमा के लिए इस्तेमाल करें; लेकिन सामर्थ्य परमेश्वर की है। परमेश्वर हमारे स्वार्थी उद्देश्य पूरे करने के लिए हमें उसकी सामर्थ्य नहीं देता है।

इसकी तुलना पहली परीक्षा से करें। शैतान ने प्रभु से कहा था, फ्तेरे पास अपनी भूख मिटाने के लिए पत्थर को रोटी बनाने की सामर्थ्य है। अब उसका इस्तेमाल कर।" यीशु ने कहा, "नहीं। सारी सामर्थ्य पिता की है। मैं तब तक उसे इस्तेमाल नहीं करूँगा जब तक वह मुझे नहीं कहेगा।"

इस बात में अनेक विश्वासी विश्वासयोग्य नहीं होते। परमेश्वर जब उन्हें एक आत्मिक वरदान देता है, वे उसे अपने स्वार्थी उद्देश्यों को पूरा करने के लिए इस्तेमाल करना शुरू कर देते हैं।

आपके पास चाहे जो भी वरदान हो - आत्मिक या प्राकृतिक - चाहे वह नबूवत का दान हो या चंगाई का, या फिर गाने-बजाने का, यह याद रखें कि सामर्थ्य परमेश्वर की है। परमेश्वर अपना कोई भी दान या सामर्थ्य हमें इसलिए कभी नहीं देगा कि हम उसके द्वारा अपने आपको ऊँचा उठा सकें।

अगर हम प्रभु के दान-वरदान अपने स्वार्थी उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल करेंगे, तो हम अंततः उन लेन-देन करने वालों जैसे बन जाएंगे जिन्हें यीशु को मन्दिर में से खदेड़ना पड़ा था। वे लोग वहाँ क्या कर रहे थे? वे वहाँ धर्म के नाम में स्वयं के लिए धन अर्जित कर रहे थे। वे कह रहे थे, "हम परमेश्वर की सेवा कर रहे हैं," लेकिन असल में वे अपनी सेवा कर रहे थे।

आज भी ऐसे लोग हैं - वे यीशु मसीह के नाम में अपने लिए नाम कमाते हैं, और अपने और अपने परिवार के लिए धन कमाते हैं - उसके नाम को अपने स्वार्थी उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल करते हैं। यीशु मसीह के नाम में कुछ करना, और उसमें से अपने लिए कुछ लाभ कमाना, एक बहुत बड़ी बुराई है - फिर चाहे वह धन पाना, आदर-सम्मान पाना, पद-प्रतिष्ठा पाना, सुख-सविधा पाना, या कुछ भी पाना हो। ईश्वरीय भक्ति हमारे लिए कभी लाभ कमाने का साधन नहीं बननी चाहिए (1 तीमु. 6:5)। आज भी, परमेश्वर के नबियों को परमेश्वर के मन्दिर में लेन-देन करने वालों को खदेड़ने की ज़रूरत है।

महिमा परमेश्वर की हैः

तीसरी बात, "महिमा तेरी है।"

जब हमने आत्मिक रीति से यह प्रार्थना कर ली हो, और यह आत्मिक जीवन पा लिया हो, और हमने प्रभु यीशु के लिए एक अद्भुत सेवकाई पूरी कर ली हो, तब इस सबके अंत में, हम सिर्फ इतना ही कह सकते हैं, "हम निकम्मे दास हैं; हमने सिर्फ वही किया है जो हमें करना चाहिए था" (लूका 17:10)।

और हमारी कथनी और करनी में कोई अंतर न हो। हमें ऐसे लोगों की तरह झूठी नम्रता में यह नहीं कहना चाहिए, "परमेश्वर ने मेरी सहायता की है," लेकिन उनकी गहराई में, जो सारा श्रेय ख़ुद ही लेते हैं।

इस कथन की तुलना उस दूसरी परीक्षा से करें जिसका यीशु ने जंगल में सामना किया था। शैतान ने उसे मन्दिर की ऊँची मीनार पर ले जाकर उससे परमेश्वर की इस प्रतिज्ञा पर विश्वास रखते हुए, कि वह उसे बचाएगा, कूद जाने के लिए कहा, जिससे कि ज़मीन पर पहुँच कर वह सारे लोगों के मसीहा के रूप में अपने लिए आदर और सम्मान पा सके। लेकिन यीशु ने कहा, "नहीं, सारी महिमा सिर्फ पिता को ही मिले।"

परमेश्वर एक जलन रखने वाला परमेश्वर है, और वह अपनी महिमा हमारे साथ नहीं बाँटेगा (यशा. 42:8)। स्वर्ग में, और पूरे अनन्त में ऐसा कुछ भी नहीं होगा जिसके लिए किसी मनुष्य को कोई महिमा मिल सकेगी। सारी महिमा परमेश्वर के लिए ही है।

और जिस मनुष्य के हृदय में स्वर्ग की आत्मा है, उसमें यहाँ पृथ्वी पर यही मनोभाव होगा। वह हमेशा पार्श्व में (पीछे) अनदेखे और अनजाने रूप में ही रहना चाहेगा कि लोगों के ध्यान के आकर्षण का केन्द्र स्वयं वह या उसका काम नहीं बल्कि सिर्फ परमेश्वर ही हो।

ऐसा व्यक्ति एक सचेत स्तर पर कभी यह नहीं जानेगा कि उसने परमेश्वर के लिए क्या किया है, या वह आत्मिक रूप में क्या है। उसके पास ऐसा कुछ नहीं होगा जो उसे पहले दिया नहीं गया है, और इसलिए उसके पास घमण्ड करने का कोई कारण नहीं होगा (1 कुरि. 4:7)। वह पौलुस के साथ मिलकर यही कहता है, "ऐसा कभी न हो कि हमारे प्रभु यीशु मसीह की सूली के अलावा मैं अन्य किसी बात पर गर्व करूँ" (गल. 6:14)।

पौलुस ने फिलिप्पियों 3:13 में कहा, "जो बातें पीछे रह गई हैं, उन्हें भूल कर।" पौलुस के पीछे क्या रह गया था? एक जयवंत जीवन और प्रभु के लिए एक सामर्थी सेवकाई। उसने उन सब बातों को अपने मन में से निकाल दिया क्योंकि उसके जीवन और उसकी सेवकाई की सारी महिमा उसने परमेश्वर को दी थी।

यीशु ने लोगों के ऐसे दो समूहों के बारे में बात की जो न्याय के दिन उसके सामने खड़े रहेंगे।

एक समूह कहता है, "प्रभु, हमने तेरे नाम से नबूवत की, दुष्टात्माओं को निकाला, और अद्भुत चिन्ह्-चमत्कार दिखाए थे।" वे उन बातों के प्रति बहुत सचेत हैं जो उन्होंने प्रभु के लिए की हैं। और प्रभु उनसे कहता है, "हे कुकर्मियों, मुझसे दूर हटो" (मत्ती 7:22,23)।

दूसरे समूह के लोगों से प्रभु कहेगा, "जब मैं भूखा था तुमने मुझे खाने को दिया था, जब मैं नंगा था तुमने मुझे पहनने के लिए दिया था, जब मैं बीमार था और जेल में था तुम मुझसे मिलने के लिए आए थे।" लेकिन उन लोगों को यह मालूम ही नहीं था कि उन्होंने ऐसा कुछ किया था। उनका जवाब यह था, "प्रभु, हमने कब ऐसा किया था? हमें तो ये सब याद ही नहीं है।" क्या यह

एक अद्भुत बात नहीं है? और प्रभु उनसे कहता है, फ्तुम धन्य हो, क्योंकि तुम स्वर्ग का राज पाने योग्य हो" (मत्ती 25:31-40)। धर्मी जन भलाई करते हैं और भूल जाते हैं! लेकिन अधर्मी उनके द्वारा किए गए भलाई के सारे कामों का उनके मन में लेखा रखते हैं।

हमने प्रभु के लिए और दूसरों के लिए जो भी भले काम किए हैं, क्या हमें वे सब याद हैं? तो हम ग़लत समूह के लोगों में हैं!

अनन्त के लिएः

प्रार्थना आगे यह कहती है, "सदा -सर्वदा" - कुछ सालों के लिए नहीं है, बल्कि अनन्त के लिए।

हम सारे अनन्त में यही करते रहेंगे - हम परमेश्वर की स्तुति करते रहेंगे और उसके नाम की वह महिमा करते रहेंगे जिसके वह योग्य है। और हमारी सभी प्रार्थनाओं के पूरे होने का यह एक शानदार तरीक़ा है - सारी स्तुति, आदर और महिमा परमेश्वर को देते हुए जिसमें हमारे लिए कोई श्रेय न हो।

हमारी इच्छा हमेशा यह हो कि हम लोगों के ध्यान को हमारी तरफ से हटाकर परमेश्वर की तरफ फिराते रहें। हमारा लक्ष्य हमेशा यही रहे कि हम हर समय पार्श्व में ही छुपे रहें। तब परमेश्वर अपने अनेक उद्देश्य पूरे कर सकता है - हमारे लिए, हमारे अन्दर, और हमारे द्वारा।

ऐसा ही होः

आख़िर में "आमीन" है।

हम इस अद्भुत प्रार्थना का एक शब्द भी नहीं छोड़ना चाहते, और अंतिम "आमीन" तो हर्गिज़ नहीं।

"आमीन" का अर्थ क्या है? यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि मसीहियों ने इस शब्द को भी उनकी धार्मिक शब्दावली के अन्य व्यर्थ शब्दों के संग्रह में जोड़ लिया है।

लेकिन क्या आपने कभी यह सोचा है कि जब भी आप "आमीन" कहते हैं तो इसका अर्थ क्या होता है? आमीन का अर्थ है, "ऐसा ही होगा।" इस इब्रानी शब्द का अर्थ "विश्वास" है जो उत्पत्ति 15:6 में इस्तेमाल किया है जहाँ वह कहता है, "अब्राहम ने परमेश्वर पर विश्वास किया।" जब अब्राम की कोई संतान नहीं थी, तब परमेश्वर ने उससे कहा कि उसकी इतनी संतानें होंगी जितने आकाश में तारे हैं। और उस असम्भव बात के लिए अब्राम ने कहा, "आमीन। ऐसा ही हो प्रभु, क्योंकि तूने ऐसा कहा है।"

"आमीन" का यह अर्थ है। यह हमारे विश्वास की पुष्टि है।

दूसरे शब्दों में, हम यह कहते हुए यह प्रार्थना पूरी करते हैं,

"पिता, मैं विश्वास करता हूँ कि जो कुछ मैंने माँगा है, वह मुझे दिया जाएगा।"

"तेरा नाम जैसे स्वर्ग में पवित्र माना जाता है, वैसा ही पृथ्वी पर भी माना जाएगा।"

"तेरा राज्य जैसे स्वर्ग में है, वैसे ही पृथ्वी पर भी होगा।"

"तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में पूरी होती है, वैसे ही पृथ्वी पर भी होगी।"

"हमारे प्रतिदिन की रोटी तू हमें देगा।"

"तू हमारे अपराधों को क्षमा करेगा।"

"जैसे तूने हमारे अपराध क्षमा किए हैं वैसे ही तू हमारे अपराधियों को हमें क्षमा करने योग्य बनाएगा।"

"तू हमें ऐसी किसी परीक्षा में नहीं डालेगा जिस पर हम जय नहीं पा सकेंगे।"

“तू हमें बुराई से बचाएगा।”

“राज्य, पराक्रम और महिमा सदा-सर्वदा सिर्फ तेरे ही रहेंगे। हे पिता, ये सब ऐसा ही होगा। मैं अपने पूरे हृदय से यह विश्वास करता हूँ।”

आमीन और आमीन!